ब्रह्मीभूत श्री १०८ श्रीस्वामी परमानन्दजी महाराज के सदुपदेश

प्रकाशक

श्रीमगवद्भक्ति आश्रम जीन्द (कुरुक्षेत्र)

हरियाणा

सम्वत् २०२७

ब्रह्मीभूत श्री १०८ श्रीस्वामी परमानन्दजी महाराज के सदुपदेश

प्रकाशक

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम जीन्द (कुरुक्षेत्र)

हरियाणा

सम्वत् २०२७

यह पुस्तक श्री कन्हैयालाल पोसवाल, मन्त्री हरियाणा राज्य, ने अपने व्यय से छपवाई। आश्रम की ओर से उनको धन्यवाद है।

द्वितीय संस्करण, १००० प्रतियां
सन् १९७१

मुद्रक : शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

ाल, मन्त्री हरियाणा रा
ी ओर से उनको धन्यव

दरा, दिल्ली-३२

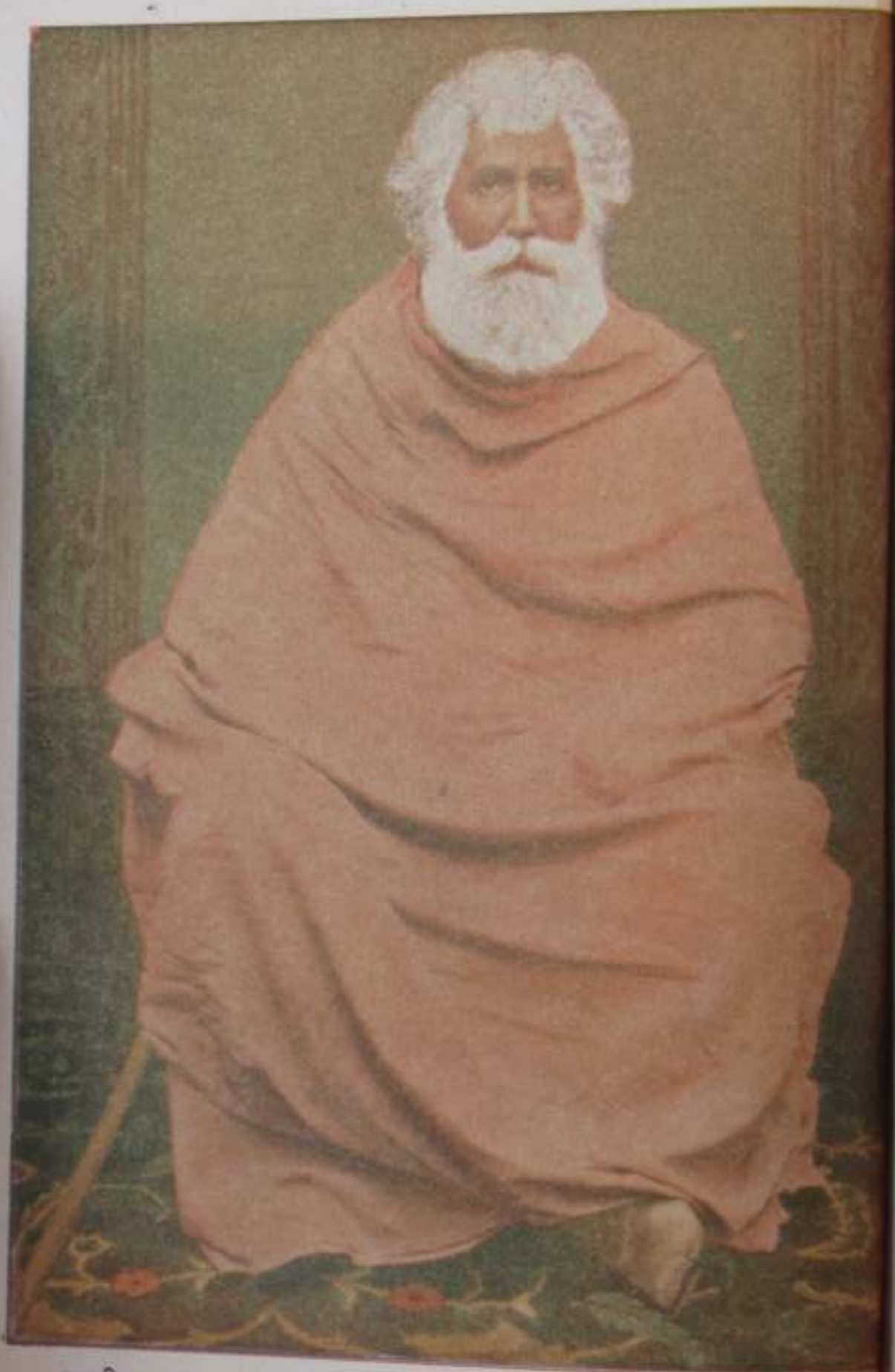

ब्रह्मीभूत १०८ श्री परमहंस श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज

परमानन्द जी

ओ३म् तत्सत् श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमः।

भूमिका

अध्यात्मकादि त्रय ताप तथा आधि, व्याधि रोगों से पूर्ण अति गम्भीर और दुस्तर जो यह भयानक संसार है, इस में जन्म-जन्मान्तरों के शुभाशुभ कर्मानुसार नीच-ऊँच अनेक योनियों में अर्थात् ८४ लाख योनियों में बारम्बार जन्मना और मरना तथा उन-उन शरीरों में अनेक प्रकार के दुःखों पर दुःख भोगना, जिन दुःखों का कोई अन्त ही नहीं है ऐसे अनन्त दुःख पूर्ण संसार समुद्र से पार जाने की इच्छा वाले जीव को एक मात्र सद्गुरु ही परम आश्रय हैं अन्य आश्रय नहीं है। अतः जीव को जानना चाहिए कि वह इस महा भयंकर और दुस्तर संसार समुद्र से पार होने के लिए योग्य सद्गुरु की शरण लेवे और उनकी कृपा सम्पादन करने के लिए शुद्ध चित्त से निरन्तर उनकी सेवा करे और उनको आज्ञा का पालन करे। मन में ऐसी भावना रक्खे कि गुरुदेव मेरी सेवा से शीघ्र ही प्रसन्न होकर मुझे ऐसा उपदेश देवें जिससे मैं इसी जन्म में मुक्त हो जाऊँ अर्थात् आगे को मेरा जन्म-मरण सदा के लिए छूट जावे।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहा वेदीन्महति विनष्टि।

केन उपनिषद् में कहा है, यदि इसी मनुष्य जन्म में ही परमात्मा सत्य स्वरूप जाना गया तब तो अमृत अर्थात् अमर हो गया और यदि इस शरीर में नहीं जाना गया तो बड़ी हानि

है। यही हानि है कि इस जीव को पूर्व अपने संचित कर्मानुसार नजाने कैसे-कैसे शरीरों की प्राप्तिहोगी उन शरीरों में कोई साधन हो सकेगा अथवा नहीं। इस मनुष्य शरीर के सिवाय कोई शरीर ऐसा नहीं है जिसमें यह जीव इस संसार सागर से पार जाने का साधन कर सके। अतः मनुष्य शरीर को प्राप्त करके इस जीव को अवश्य ही उस परमात्मा की आराधना करनी चाहिए और सत्पुरुषों का सत्संग करना चाहिए। सत्पुरुषों का सत्संग जीवों की सभी प्रकार की उन्नति करता है, उनके सत्संग से ही भगवान् का ज्ञान होता है।

दुर्लभं त्रयमवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्, मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं-महापुरुषसंश्रयः।

इस संसार में जीवों के लिए सभी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं परन्तु तीन चीजों की प्राप्ति होना अत्यन्त ही दुर्लभ है। क्योंकि जब तक उस परम पिता परमेश्वर का अनुग्रह न होगा तब तक यह तीनों नहीं मिल सकते। वह तीन एक तो मानव देह की प्राप्ति, दूसरी इस अपार संसार के जन्म मरणादि भय से छूटने की इच्छा मुमुक्षा और तीसरी ऐसे सद्गुरु की प्राप्ति जो कि स्वयं भी इस संसार सागर से पार हो चुके हैं और अन्यान्य दुःखी जीवों को अपने अमृतमय उपदेशों से शीतल करके उस पारावार रहित परम पुरुष की प्राप्ति करा सकते हैं। इन तीनों में उत्तरोत्तर की अधिक दुर्लभता है। ८४ लक्ष योनियों में भ्रमते हुवे जीवों को प्रथम तो मनुष्य देह की प्राप्ति ही अत्यन्त दुर्लभ है, और यदि

देवानुग्रह से अनन्त पुण्यों के फल स्वरूप और उस परमात्मा की प्राप्ति के योग्य शास्त्रोक्त साधन करने में समर्थ ऐसे इस मनुष्य देह को प्राप्त करके भी यदि मोक्ष की इच्छा नहीं हुई किन्तु इन्द्रिय के विषय-भोगों में ही कूकर-शूकरवत् अपना जीवन नष्ट कर दिया तो उलटा अनर्थ ही कमाया। इसलिए मनुष्य शरीर का कुछ फल न हुआ।

यह तन कर फल विषयन भाई, स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुःखदाई।

और यदि मानव देह भी होवे, तथा मोक्ष की इच्छा भी होवे, परन्तु योग्य सद्गुरु की प्राप्ति न होवे तो भी वह इस संसार समुद्र से पार नहीं जा सकता है।

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षण भङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये बैकुण्ठ प्रिय दर्शनम्॥

२९, भाग० स्कं० ११।

मोक्ष का साधन भूत जो यह मनुष्य शरीर है जिसका एक क्षण भर का भी विश्वास नहीं किया जा सकता अर्थात् न जाने किस क्षण में नाश हो जावेगा ऐसा वह मनुष्य शरीर का मिलना भी प्रथम तो जीव को अत्यन्त ही दुर्लभ है और यदि यह दुर्लभ देह भी मिल जावे तो जो बैकुण्ठ प्रिय भगवद्भक्त जन हैं उनका दर्शन मिलना तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। श्रीमद्भागवत् में कृष्ण भगवान् अपने प्रिय उद्धव भक्त को कहते हैं:—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, पल्वं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।

मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धि न तरेत्स-आत्म हा ॥१८

यह मनुष्य देह समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का आदि मूल कारण है तथा इस संसार सागर से पार उतरने के लिए यह देह दृढ़ नौका रूप है तथा सद्गुरु ही इस नौका के कर्णधार मल्लाह हैं और मुझ पर भगवान् का अनुग्रह होना अनुकूल पवन है। जिससे सहज में ही नाव किनारे जा लगे, इतना होने पर भी अर्थात् दुर्लभ मनुष्य देह पाकर भी जो पुरुष संसार सागर से पार नहीं होता वह आत्महत्यारा है। परमात्मा की प्राप्ति करना तो जीव के लिए परम कल्याण स्वरूप है और परमात्मा की प्राप्ति नहीं करना अत्यन्त अनर्थ रूप है। आत्महत्या से बड़ा और क्या अनर्थ होगा। अतः आत्महत्या आदि अनर्थों से बचने का उपाय इसी शरीर में कर लेना चाहिये नहीं तो जैसे कोई दरिद्री पारसमणि छिन जाने से पछताया था वही दशा अपनी भी होगी। दरिद्री रोता हो रह गया बहुत चाहा कि एक सूई ही सोना बना लूँ परन्तु अब कहां बना सकता था, वह समय तो निकल गया, पश्चाताप और रोना शेष रह गया। सारांश यह है कि जीव को मनुष्य देह पाकर व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। यह अमूल्य देह बार-बार नहीं मिल सकता। इसलिए इस देह में अपना परमार्थ सिद्ध कर लेना चाहिए। संसार के काम किसी के कभी पूरे नहीं होते हैं। यह तो हरेक जन्म में जीवों के साथ बने ही रहते हैं परन्तु यह मनुष्य देह नहीं मिलता। यदि ऐसे

देह को पाकर भी संसार के धन्धे में ही खो दिया तो हस्तगत अमर फल को त्याग कर विष के फलों का ही संग्रह किया।

दोहा—मनुष्य देह प्रापत भयो सब प्रापत को मूल।
तामें हरि प्रापत नहिं सब प्रापत में धूल ॥

इस मनुष्य शरीर से जीव सब कुछ सिद्ध कर सकता है, कठिन से कठिन काम कर सकता है, ऊँचे से ऊँचा इन्द्रादि पद प्राप्त कर सकता है परन्तु अपना आपा नहीं जाना तो जो कुछ किया वह सब नहीं के समान ही है। जैसा वृह-दारण्यक् उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने गार्गी के प्रति कहा है—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति यजते तपत्यते बहूनि वर्ष सहस्त्राण्यन्त वदेवास्य तद्भवति।

हे गार्गी ! इस अविनाशी अक्षर आत्मा को नहीं जान कर यह जीव इस लोक में जो अग्निहोत्र कर्म करता है अथवा देवताओं का यजन करता है अथवा हजारों वर्ष पर्यन्त घोर तपश्चरण करता है यह सब कुछ किया हुआ भी आत्म-ज्ञान हीन पुरुष का अन्त वाला ही होता है तथा—

"यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एततक्षरं गार्गिविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्रह्मण:॥१०॥ बृ० ३ ब्रा०८

हे गार्गी ! इस अक्षर आत्मा को अपना स्वरूप करके जो नहीं जानता है वह इस देह को त्याग कर अन्य देह को धारण करता हुआ कृपण ही है अर्थात् अपने आत्मानन्दरूप स्वधन के विद्यमान् हुए भी आत्म-सुख से वञ्चित रहता है।

और हे गार्गी ! जो इस अक्षर आत्मा को अपना स्वरूप-भूत जान कर देह का त्याग करता है वह ब्राह्मण होता है अर्थात् ब्रह्म स्वरूप ही होता है जैसा कि—

ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहा ग्रन्थिभ्योविमुक्तोऽमृतो भवति ॥ मुण्डक० ३–३ ।

ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म ही है, वह शोक मोहादि धर्मों से पार हो गया, तथा जन्मान्तरों के पापों से मुक्त हो गया, माता के उदर रूपी गुहा में जन्म लेने से सदा के लिए छूटकर मुक्त हो गया। अथवा यों कहो कि वह अमर हो गया मृत्यु के चंगुल से बाहर हो गया। ऐसे ज्ञान को प्राप्त कर लेने के लिए ही यह मनुष्य शरीर है सो यह मनुष्य देह पाकर कहीं व्यर्थ न चला जावे बहुत ही सावधानीपूर्वक जीवों को अपना परमार्थ सिद्ध करना चाहिये अस्तु—

यह परमानन्दामृत नामक पुस्तक वास्तव में परम आनन्द और परम अमृत रूप है। इस पुस्तक के ध्यानपूर्वक स्वाध्याय से निश्चय ही जीव को स्व स्वरूप की प्राप्ति होगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

राम—

॥ ॐ ॥

ब्रह्मनिरूपण

हे सच्चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप, सर्व-व्यापक प्रभो ! हे सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्व हृदयान्तरगत, स्वयं प्रकाश, अज, ज्योति स्वरूप मेरे प्यारे परमात्मन् ! हे मेरे प्यारे परमपिता ! यदि मैं तुमको यहां अपने आत्मा में नहीं पा सका तो कहां और किस जगह पा सकूंगा। हे मेरे सर्वस्व स्वामिन् ! तुम्हारी महिमा को ब्रह्माण्ड के सकल पदार्थ उच्च स्वर से पुकार रहे हैं। संसार की सुन्दर वस्तुयें एक विशेष आपके सौन्दर्यता की सत्ता की साक्षी हैं। प्रत्येक मधुर वस्तु आपके अत्युत्तम मधु को दर्शाती है ! जो कुछ अच्छा है वह अपने से अत्युत्तम श्रेष्ठता की हस्ती का प्रमाण है। आपके श्रेष्ठ स्वरूप को प्रत्येक पवित्रतायें दर्शाती हैं। अन्य पदार्थों के सौन्दर्य और पवित्रता के आप श्रोत हैं। जो पदार्थ आपके समीप हैं वे श्रेष्ठ और जो दूर हैं वे निकृष्ट कहाते हैं। आप यह हो न वह, वरंञ्च सारे पदार्थों में हो। कोई परमाणु आपसे खाली नहीं है। सब में सर्व आप ही परिपूर्ण हैं। मैं तुम्हारी शरण हूँ। मुझे स्वयं स्वरूप में मिला लो अर्थात् अपना लो।

हे प्रभो ! जब हम किसी वस्तु से प्यार करते हैं तो आपके कारण से करते हैं। प्यासा पुरुष जल की अभिलाषा इसलिए करता है कि जल में आप निवास करते हैं। सम्पूर्ण पदार्थ आप के शब्द हैं और बोलते हैं कि मैं ही हूँ और कुछ हुवा न होगा न है। आप ही नित्य पदार्थों में नित्य हो जैसा कि धर्मराज कठ उपनिषद् में कहते हैं:—

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनाना—
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मास्थं ये नु पश्यन्ति धीरा—
स्तेषां शान्ति शाश्वती नेतरेषाम्॥

अनित्य पदार्थों में नित्य हो, चैतन्यता सब में आप हो, बहुतों में एकता आप हो, अर्थात् बहुतों के एक आप ही आधार और अधिष्ठान हो। जो कामनाओं को विशेष रूप से धारण करता है उस आत्मस्थ आपको जो ध्यानशील अपने से अभेद देखते है उनको शाश्वती अर्थात् परमशान्ति अपार सुखोपलब्धि होती है औरों को नहीं। भगवान् व्यास भी प्रतीकोपासना और अहंग्रह उपासना द्वारा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कथन करते हैं। उन दोनों उपासनाओं को ब्रह्ममीमांसा दर्शन के अध्याय चार सूक्त ५ में यों आज्ञा दी है।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्

अर्थात् प्रतीक में ब्रह्मदृष्टि हो, ब्रह्म में प्रतीक भावना मत करो।

आत्मेवतूपगच्छन्ति ग्राह्यन्ति च

अर्थात् ब्रह्म को अपना आत्मा अपना आपा बार बार चिन्तन करो जैसा कि स्वामी शंकर भगवान् निर्वाण षटक में यह वर्णन करते हैं।

मनो बुद्धचहंकार चित्तानि नाहं
न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु–
श्चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥१॥

न च प्राण संज्ञो न वै पंच वायु–
र्नवा सप्त धातुर्नवा पंच कोशः।
न वाक्पाणि पादं न चोपस्थ पायू,
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥२॥

न मे द्वेष रागौ न मे लोभ मोहौ,
मदो नैव मे नैव मात्सर्य भावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष–
श्चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥३॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं,
न मन्त्रं न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।

अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता,
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥४॥
न मृत्यु र्न शंका न मे जाति भेदः,
पिता नैव मे नैव माता च जन्म।
न बन्धु र्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य–
श्चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥५॥
अहं निर्विकल्पो निराकार रूपी,
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न चा संगतं नैव मुक्ति र्न मेय–
श्चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥६॥

श्रीकृष्ण जी अर्जुन के प्रति गीता में यह वाक्य कहते हैं:—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

जो मुझ को सर्वत्र देखता है और सब में मुझ को देखता है ऐसे समदृष्टा पुरुष की दृष्टि से मैं कभी ओझल नहीं होता और वह भी मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होता। मैं सब का उत्पत्ति स्थान हूँ, मुझ से सब प्रवृत्त हुवा है। ऐसा मान कर ज्ञानी लोग अद्वैतभाव से युक्त होकर मेरा भजन करते हैं। मुझ में चित्त को लगाते, प्राणों को मेरा रूप समझते, एक

दूसरे को समझाते, मेरा कीर्तन करते हुवे नित्य सन्तुष्ट होते हैं और विलास करते हैं तब मैं उनको अखण्ड ब्रह्माकार वृत्ति प्रकाशित कर देता हूँ। उन निरन्तर योग साधने वालों को, प्रीतिपूर्वक भजन करने वालों को मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे मेरे समीप आकर मैं ही मैं हो जाते हैं और यह मैं नहीं हूं सब अज्ञान नष्ट हो जाता है।

ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्

ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है ऐसे सातवीं अध्याय में परोक्ष ज्ञानियों के लिए कहते हैं:—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते

बहुत से जन्मों के अन्त में ज्ञानवान् मुझको पाता है। परोक्ष ज्ञानियों के विषय में कहते हैं:—

वासुदेव सर्वमिती स महात्मा सुदुर्लभ

वासुदेव ही सब कुछ है ऐसे मानने वाला महात्मा दुर्लभ है। मेरे सदृश मुझ से सूक्ष्म वा भिन्न कोई नहीं है। मुझ में सूत्र में ग्रन्थि की भान्ति सब कुछ पुरोये हुवे हैं। हे कुन्तीपुत्र! मैं जल में रस हूँ, सूर्य चन्द्रमा में प्रभा रूप हूँ, सब वेदों में ओंकार हूँ, आकाश में शब्द रूप हूँ, मनुष्यों में जो पुरुषार्थ है वह मैं हूँ। मैं ही पृथिवी में गन्ध रूप हूँ, अग्नि में तेज हूँ, सब प्राणियों में जीवन हूँ और तपस्वियों में तप रूप मैं हूँ।

ओं पितानोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽस्तु मामा हिंऽसि

आप हमारे पिता हैं 'पाति रक्षति इति पिता' हमको यथार्थ ज्ञान हो, आपके लिए हमारा अनन्तवार नमस्कार हो। हमको अपने वियोग के दुःख से अर्थात् जन्म मरण के चक्र से हिंसा मत करो।

पूर्वोक्त ज्ञान के अनुसार हमको यह विचारना चाहिये कि जो कुछ हमारी दृष्टिगोचर होता है अर्थात् जो मन और इन्द्रियों से अगोचर है वह सर्व मैं ही मैं हूँ। यही ज्ञान का प्रकाश है जैसा कि उपनिषदों में लिखा है।

सर्वमहमस्मीत्युपासीत् तद व्रतं सर्व खल्विदं ब्रह्म।
तज्जलानीति शान्त उपासीत्।

यह सब कुछ मैं ही हूँ यह व्रत है, इसी से मोक्ष होती है, बड़े मन वाला होवे यह व्रत है। अर्थात् ब्रह्मज्ञानी की प्रतिज्ञा है कि महान् ज्ञान प्राप्त हो और परिछिन्न ज्ञान का विध्वंस हो। और मैं ब्रह्म हूँ यह शान्त मन से उपासना करे। उसी 'मैं हूँ' आत्मा से जगत् उत्पन्न होता है और उसी में चेष्टा करता है और उसी में सुषुप्तिकाल में अर्थात् प्रलय में लय हो जाता है। भृगु ने अपने पिता वरुण से पूछा कि भगवन्! सत्यादि लक्षण वाले ब्रह्म का उपदेश करो कि उसका क्या लक्षण है। वरुण ने कहा:—

अन्नं प्राणं चक्षुश्रोत्रं मनोवाचमिति

प्राण, चक्षु, श्रोत्र, अन्न, मन और वाणी यह ब्रह्म के साधन हैं।

यतो वाइमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि सं विशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद ब्रह्मेति।

जिससे यह सब प्राणीमात्र उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुवे जिससे जीते हैं और जिसमें लय को प्राप्त हो जाते हैं, जिसमें सुषुप्ति अवस्था तथा प्रलयकाल में सब प्राणी ब्रह्म के तादात्म्य भाव को प्राप्त हो जाते हैं या यों कहो कि ब्रह्म बन जाते हैं उस के जानने की इच्छा करे वह ब्रह्म है।

अन्नं ब्रह्मेति विजानीयात् मनो ब्रह्मेति विजानीयात् विज्ञानं ब्रह्मेति विजानीयात्।

प्रथम अन्नमय कोष को ब्रह्म जाने, तदनन्तर मनोमय कोष को ब्रह्म जाने, तत्पश्चात् विज्ञानमय कोष को ब्रह्म जाने।

आनन्दात् ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयान्त्यभिसंविशन्ति।

आनन्द से ही निश्चय करके यह सब भूत प्राणि उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुवे-हुवे आनन्द से ही जीते हैं, पुनः आनन्द को ही प्राप्त हो जाते हैं और आनन्द में ही अन्त में लय हो जाते हैं।

यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह आनन्दं ब्रह्मणो

विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति ।

मन के सहित वाणी जिसको अप्राप्त होकर लौट आती है उसको ब्रह्म जानकर विद्वान् किसी से भय नहीं करता। निश्चय करके ब्रह्म अभय है ।

स यो अभयं भवति यः एवं वेद स धाता स विधाता स वायुर्नभ उच्छ्रितं सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः सोऽग्नि स उ सूर्य स उ एव महायमः ।

वह धारण करने वाला, वह विशेष रूप से होकर धारण करने वाला आधार आधेय भाव को प्राप्त होने वाला वह बलवान वायु, वह ऊँचा आकाश है, वह अर्यमा न्यायकारी वह श्रेष्ठ वरुण है, वह रुद्र और महादेव है, वह अग्नि वही सूर्य है और वही महायम है ।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति,
न मनो न विद्मो न विजानीमो ।

न उसमें नेत्र जा सकता है, न वाणी जा सकती है और न मन से जान सकते हैं । और न विशेष रूप से जान सकते हैं । वह ब्रह्म ज्ञात वस्तु से अन्य और अज्ञात वस्तु से ऊपर है ऐसा ही ऋषि कहते हैं कि हम पूर्वाचार्यों से सुनते हैं ।

यद्वाचा नाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

जो वाणी से प्रकाशित नहीं होता, जिससे वाणी प्रकाशित होती है उसी को तू ब्रह्म जान। जो यह इन्द्रियों का विषय जगत् है जिसको लोग उपासते हैं वह ब्रह्म नहीं। जिसको मन से कोई नहीं जानता, जिससे मन जाना गया है उसको तू ब्रह्म जान। मन से जानने के योग्य सुखादि की जो लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं। जिसको चक्षु से नहीं देखता, जिससे आंख देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान रूपादि ब्रह्म नहीं। जिस से यह कान सुनता है उसको ब्रह्म जान यह शब्द ब्रह्म नहीं जो कान से सुना जाता है। जो प्राण से चेष्टा नहीं करता, जिससे प्राण चेष्टा करता है उसी को तू ब्रह्म जान। जो इस श्वास प्रश्वास वायु की उपासना करते हैं यह ब्रह्म नहीं है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म

ब्रह्म सत्य ज्ञान और अनन्त है, ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है 'तत्वमसि' वह ब्रह्म तू है। 'अहं ब्रह्माऽस्मि' मैं ब्रह्म हूँ। जो इस प्रकार जानता है उसके लिए श्रुति माता घोषणा देती है:—

ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन ब्रह्माप्येति।

ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। योगी की तरह ब्रह्मज्ञानी के प्राण किसी ब्रह्मादि लोक विशेष को उत्क्रामण नहीं करते। वह यहीं ब्रह्म बनकर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। और

भी वेद भगवान् कहते हैं–

न सदासीन्नो सदासीत्तदानीं,

न आसीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरी वः कुहकस्य शर्म्म–

न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥

उस समय न तो सत् था और न असत्, न रजोगुण तमोगुण सतोगुण का प्रकाश हुवा था और न आकाश था जो अन्तरिक्ष के और विराट के अस्तित्व का बीज है यह भी न था। फिर इस जगत् को कौन घेरता, कहां से घेरता, किसके आश्रय घेरता ? गहन गम्भीर जल तो क्या प्रकृति भी द्रवावस्था में न थी। उस समय न मृत्यु थी, न अमृत, दिन और रात का कोई चिह्न न था। केवल एक तत्व बिना श्वास लेने के प्रकृति के साथ जीवित था। उसके विना और कुछ न था। प्रकृति उसकी स्वाभाविक शक्ति को कहते हैं। ब्रह्म को स्वधा इस अभिप्राय से कथन किया है कि स्व आत्मा ही है आधार जिसका। उसी को उपनिषद् में माया कहा है। माया ही प्रकृति है 'मीयते अनया इति माया' विस्तृत होने की इच्छा का नाम प्रकाश है। प्रकाश से पहले वह इच्छा विद्यमान होनी चाहिये। यह इच्छा एक प्रकार की शक्ति है जो विशेषाकार ग्रहण करती है। प्रकृति का विशेष गुण विस्तार ही नहीं समझना प्रत्युत विस्तृत होने की इच्छा और उसकी इच्छा को पूर्ण करने का बल है। इसी को

सांख्य में कपिल भगवान् यों वर्णन करते हैं—

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः

सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण की जो साम्यावस्था है उसको प्रकृति कहते हैं। उसी को स्वामी शंकराचार्य जी ने यों कथन किया है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति,
रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया,
यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते॥

परमेश्वर की शक्ति अव्यक्त नाम वाली उत्पत्ति रहित मूला अविद्या त्रिगुण रूप कार्य वर्ग से परे सुष्ठू बुद्धि वालों ने माया कार्य से अनुमान कराने वाली कथन की है। यह स्थावर जंगम जगत् जिससे उत्पन्न होता है। न सत् है न असत् वरंच उभय रूपा है। न संग है न असंग प्रत्युत उभय रूपा है। न भिन्न न अभिन्न किन्तु उभय रूपा महा अद्भुत अनिर्वचनीय स्वरूपा है। वेद भगवान् यों कहते हैं—

तम आसीत्तमसा मूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्व मा इदं तुच्छे नाभ्वपहितम्। यदासीत्तपसस्तन्महिनाऽजायतैकम्॥

उत्पत्ति से पूर्व अन्धेरे से ढका हुवा अन्धेरा था। यह

सारा जगत् अलिङ्गावस्था में एक रस पड़ा था। वह जो कुछ फैला हुवा है उस समय तुच्छ से ढका हुवा था। फिर तप अर्थात् जगत् के उत्पन्न करने के संकल्प की बड़ी शक्ति के साथ वह एक अर्थात् जो तुच्छ नाम से ग्रहण किया है। तब आरम्भ में इच्छा उत्पन्न हुई। वह इच्छा जो जगत् के चित्र वा रचना का पहिला बीज थी। उन बुद्धिमानों ने जिन्होंने गहरे विचार के साथ ढूंढ की अर्थात् मालूम किया कि सत् का असत् से सम्बन्ध है। एक टेढ़ी रेखा खेंची गई। फिर इस रेखा के ऊपर क्या था और नीचे क्या था। बीजों के धारण करने वाले संस्कार उसमें विद्यमान थे। अर्थात् आत्मा और बड़ी-बड़ी शक्तियें थीं। वरे माया थी और परे शक्ति। कौन जानता है और कौन वर्णन कर सकता है कि यह जगत् कहां से आया और किस तरह इसकी विविध रचना हुई क्योंकि देवता इस रचना के पीछे के हैं। फिर कौन कह सकता है कि यह जगत् कहां से आविद्यमान हुवा। अर्थात् यह कोई नहीं जानता कि उत्पत्ति से पूर्व सूर्यादि लोकों के सूक्ष्म अवयव किस स्थान में थे। यह सृष्टि कहां से आविद्यमान् हुई? क्या उसने सारो की सारी माया को रच दिया है? हे प्यारे! परम आकाश में इसका अध्यक्ष है। यह इस रहस्य को जानता है चाहे नहीं जानता। अर्थात् परमेश्वर ही इस बात को जानता है और कोई नहीं इस अभिप्राय को प्रकट करने के लिए संस्कृत की शैली है वह जानता है चाहे नहीं जानता यह उसकी मर्जी। सन्त मत में

इसे मौज कहते हैं। जैसे कि समुद्र में मौज उठती है और बिजली सी लहराती हुई उसमें द्वैत उत्पन्न कर देती है। यह मौज क्यों उठती है अर्थात् यों कहो कि यदि परमेश्वर अपने एक रूप को त्याग कर समुद्र की तरंगों के समान बहुत रूपों को क्यों धारण करता है ? तो इसका उत्तर यह है कि यह एक रहस्य है जो मनुष्य की समझ में नहीं आ सकता। जब तक गुरु परमेश्वर की महती दया न हो। परन्तु खबरदार स्मरण रखना कठोपनिषद् में धर्मराज पुकार कर कह रहे हैं:—

नैषा तर्केण मतिराप्नेया प्रोक्तान्ये नैव सुज्ञानायप्रेष्ट

हे प्रेष्ठ प्रियतम शिष्य ! यह बुद्धि जो आगम प्रसूता है इस को तर्क अर्थात् बुद्धि कल्पित हेतुओं से नहीं बिगाड़नी चाहिए। अन्य अतिरिक्त अपार सुख स्वरूप शुद्ध ब्रह्म की वाणी में गुरु द्वारा उपदिष्ट बुद्धि सम्यक् ज्ञान के लिए अर्थात् परमेश्वर प्राप्ति के लिए होती है और नहीं। कठोपनिषद् में यमराज कहते हैं—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥

यह आत्मा पठन-पाठन आदि उपदेश से प्राप्त नहीं होता और बुद्धि से भी नहीं मिलता, बहुत सुनने से भी नहीं जाना जाता। यह जिसको ही दृढ़ निश्चय बुद्धि से गुरु धारण कर लेता है अर्थात् परमेश्वर के लिए स्वीकार कर लेता है उस से ही प्राप्त करने योग्य है। यह आत्मा परमात्मा उसके लिए अपने

यथार्थ स्वरूप को प्रकाश कर देता है। मुण्डक में भी यही लिखा है कि विद्या दो प्रकार की होती हैं। जो इन्द्रियों से और मन के सम्बन्ध से ज्ञान होता है उसका नाम अपरा विद्या है। उसके दो भेद हैं तर्क और विज्ञान। अविज्ञात तत्व अर्थ में कारण की उपपत्ति से किया जो विचार उसका नाम तर्क है। मैं क्या हूँ, कहां से आया हूं, मेरा अन्त क्या होगा? मनुष्य इस जगत् के विषय में पूछता है कि क्यों है, कहां से आया है, इसके बनाने वाला इसका अंश है या इससे स्वतन्त्र है? यदि स्वतन्त्र है तो उसका स्वरूप क्या है? क्या मनुष्य का जीवन इस जगत् के सम्बन्ध में ही व्यतीत हो जाता है वा कोई और भी अस्तित्व है जो इसके जीवन में हस्तक्षेप या दखल रखता है? यह हैं तर्क के मुख्य प्रश्न जो मनुष्य के अपने विषय में हैं। विज्ञान प्रकृति के ज्ञान को कहते हैं जिसमें गणित, भौतिक रसायन, जीवन मनोविज्ञानादि सम्मिलित हैं। मुण्डक उपनिषद् में भी लिखा है—

द्वे विद्ये वेदितव्य इति परा चैवापरा च।

दो ही विद्या जाननी चाहियें परा और अपरा।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

इन दोनों विद्याओं से ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम, अथर्व, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष आदि अपरा विद्या हैं।

अथ परा यया तदक्षरं अधिगम्यते

जिससे अक्षर ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो वह परा विद्या कहाती है। माता जिसकी विदुषी, धार्मिक और सुशीला हो, पिता अच्छा हो, आचार्य सदाचारी हो वह पुरुष इस परा विद्या को जानने का अधिकारी है। याज्ञवल्क्य ने भी जनक राजा को कहा था कि हे राजन्! जिस प्रकार मातृमान्, पितृमान् आचार्यादि तीनों से शिक्षा पाया हुवा पुरुष उपदेश देता है इस प्रकार से तुझको ऋषियों ने कहा है परन्तु उसका आधार और अधिष्ठान नहीं बतलाया। जब राजा जनक ने विदेह राज्य सहित अपने आपको मन सहित उसके अर्पण किया, तब याज्ञवल्क्य ने शिष्य स्वीकार कर अर्थात् अधिकारी जान तुर्यापद का उपदेश किया क्योंकि वह विषय बिना धीर पुरुषों के अगम्य है। मुण्डक में कहा है—

यत्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्ण–

मचक्षुः श्रोत्रं तद-पाणिपादम्

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं,

यद्भूत योनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

जो आत्मा जिसका वर्णन ऊपर से चला हुवा है वह अदृश्य अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का विषय नहीं है और कर्मेन्द्रियों का विषय नहीं है क्योंकि उसका कोई गोत्र नहीं है। रक्तपीतादि वर्णों से रहित है, चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियों से रहित है, पादादि से रहित है। सर्वव्यापक और अत्यन्त सूक्ष्म है। उस अविनाशी अर्थात्

बुद्धि और क्षय से रहित जिस चराचर सृष्टि के कारण को ध्यानशील, गुरुभक्त विवेकी पुरुष ज्ञान दृष्टि से सर्वत्र देखते हैं उसी का नाम ब्रह्म है। उसी को अक्षर कहा है और उसी की शक्ति को भी अक्षर कहते हैं।

मम योनिर्महद ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्

मेरी योनि महत् ब्रह्म अर्थात् प्रकृति शक्ति है मैं उसमें गर्भ धारण करने वाला हूँ। जैसे अच्छी प्रदीप्त हुई अग्नि से उसके समान रूप वाले हजारों चिनगारे उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से बहुत प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और उसी में लय हो जाते हैं। दीप्ति वाला, प्रकाशमय ज्योति स्वरूप परमेश्वर मूर्त्त धर्म से रहित है, सर्व व्यापक है, वही भीतर और बाहर है, उत्पत्ति से रहित है इसलिए प्राणों से भी रहित है और मन से भी रहित है। अतएव शुद्ध स्वरूप है, अव्याकृतरूप मायाप्रकृति से भी परे है, परम सूक्ष्म है, पूर्व पश्चात् वही एक विद्यमान है। आदि में वही था और अन्त में वही रहेगा। परन्तु यह तो जगत् है वह आदि में नहीं था और अन्त में न रहेगा परन्तु वर्तमान में अज्ञान से अथवा इन्द्रियों के मेल से प्रतीत होता है। वास्तव में यह वही है। जैसे कि समुद्र की तरंग झाग बुद्बुदा समुद्र से भिन्न नहीं होते समुद्र रूप ही होते हैं तथा जिस प्रकार दीपक से प्रकाश निकलता है तो प्रकाश से ज्योति न्यूनाधिक कुछ नहीं होती इसी प्रकार

श्रुति बार-बार यही कहती है—'सदेव सोम्येदमग्रासीत्' इससे आगे सत् ही था अथवा हमसे पहले ब्रह्म ही था। उसने शक्ति का रूप धारण कर कामना की कि मैं बहुत प्रजारूप हो प्रकट होऊँ। इसके अनन्तर उसने तप अर्थात् विचार किया और इस सब जगत् को रचा और रच कर वही जीवात्मा हो पीछे उसमें प्रवेश कर कारण और कार्य हो गया। अर्थात् दूध जिस प्रकार अपनी सफेदी का कारण है इसी प्रकार परमात्मा अपनी अनिर्वचनीय अघटित घटना पटीयसी माया रूपी शक्ति का कारण है। जैसे समुद्र लहर को उत्पन्न कर आप ही कार्य कारण की तरंग बन जाता है। उसी प्रकार परमेश्वर ने इस सब ज्योति को रच कर उसमें आप ही उसका रूप धारण किया है। यही आदि शक्ति कहलाता है। महा ईश्वरी भी इसी का नाम है। सम्पूर्ण आनन्द से परिपूर्ण भगवती को नन्दा कहते हैं। इसमें वही शुद्ध ब्रह्म प्रवेश कर पृथिवी अपतेज यह मूर्त रूप और वायु आकाश अमूर्त रूप हुवा। कार्यरूप से निरुक्त करने योग्य और कारणरूप से अनिरुक्त हुवा। और अधिकरण रूप और अधिष्ठानरूप अर्थात् निराश्रयरूप अंशों का आधार हुवा। विज्ञान और अविज्ञान अर्थात् मनुष्यादि रूप चैतन्य और पृथिवी आदि रूप जड़ हुवा। व्यवहार योग्य रज्जु सर्पादि रूप से अन्यथा ख्याति रूप हुवा। इसलिए यह जो कुछ है वह सत् ब्रह्म ही कहा जाता है। यह प्रसिद्ध है कि सृष्टि से पूर्व नाम रूपात्मक यह जगत् न था। 'ततः वैसत् अजायत'

वही सत् की तरह कार्य रूप जगत् उत्पन्न हुवा। उसने अपने आपको अपनी आत्मभूत तथा जीव को स्वयं बनाया। इसी कारण से उस ब्रह्म का नाम सुकृत कहा गया है। वह आनन्द स्वरूप है। उस आनन्द स्वरूप को लाभ करके यह जीव आनन्दित होता है। क्योंकि वही इसका आनन्ददाता है। यदि यह आनन्द स्वरूप न होता तो कौन प्राण को धारण कर श्वास ले सकता था क्योंकि वह प्राणों का प्राण है। निश्चय करके यह इस सृष्टि गोचर शरीर रहित, निरुक्ति रहित, अधिकरण रहित उभय रूप प्रतिष्ठा को लाभ करता है। तब वह अभय को प्राप्त होता है। जब यह उस ब्रह्म में अल्प भी भेद बुद्धि करता है तब उसको भय होता है। विद्वान् को ब्रह्मज्ञान से रहित होना ही भय का हेतु है। इस जगत् में जीव रूप द्वारा प्रवेश करके नाम रूप को रचूं परमेश्वर ने कहा एक से मैं बहुत होऊँ। तब उसने तेज को रचा। 'एक मेवाद्वितीयम्' एक ही अद्वितीय ब्रह्म है और कुछ नहीं हुवा न होगा न है। केवल वाणी का विलास करते हैं। वृहदारण्यक में लिखा है—

आत्मैवेद मग्रासीत्

इससे पहिले आत्मा ही था। उसने पुरुष की तरह देख अपने आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा। वह मैं हूँ इस प्रकार आगे विचारा। इससे इसका 'मैं हूँ' नाम हुवा। प्रथम मैं हूँ का ज्ञान उत्पन्न हुवा। पश्चात् इससे मैं ही मैं हूँ यह उत्पन्न किया। क्रम इस प्रकार है प्रथम कहने-सुनने से रहित

तदनन्तर मैं हूँ का ज्ञान उत्पन्न हुवा। इसके पश्चात् ओंकार रूपी रस हुवा, उससे शक्ति सम्पादन कर अनहं को देख प्रकाश किया। उससे एक प्रकार का तेज बना जो महा अद्भुत प्रकाश है। जो ब्रह्माण्डों का उत्पत्ति कर्ता महत्व वा आदि मन कहलाया। जैसा कि सांख्य में लिखा है—'महदाख्यमादि कार्यं तन्मनः' इस ब्रह्माडि मन को शुद्ध मन और पिण्ड मन को अशुद्ध मन उपनिषद् में कथन किया है।

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धं मेव च।
अशुद्धं काम संकल्पं शुद्धं काम विवर्जितम्॥

इसलिए परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि जो मेरा मन जाग्रत अवस्था में दूर-दूर तक चला जाता है और स्वप्नावस्था में ताना-बाना तनता रहता है तथा सुषुप्ति काल में अपने कारण को प्राप्त हो जाता है और जो ज्योतियों का भी ज्योति स्वरूप है वह मेरा मन कल्याण का देने वाला होवे।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बद्धाय विषया संगं मुक्त्यैनिविषयं स्मृतम्॥

मन ही मनुष्यों के लिये बन्ध और मोक्ष का कारण है। विषयों के संग से बन्धन को प्राप्तहोता है और निर्विषय मोक्ष को।

सत्वरजतमसां साम्यावस्था प्रकृति प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारः अहंकारात्पंचतन्मात्राणि उभय इन्द्रियं पञ्च तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्च विंशतिर्गणाः।

शुद्ध, मध्य, जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिल कर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है उससे महतत्व बुद्धि, उस से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्रा सूक्ष्मभूत, दशों इन्द्रियां, एकादशवां मन और पंच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पंचभूत यह चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अविकारिणी और महतत्व अहंकार, पांच सूक्ष्म भूत, प्रकृति का कार्य, और इन्द्रियां, मन तथा स्थूल भूतों का कारण है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तय नश्नन्योऽभिचाक शीति॥

दो अच्छे परों वाले मित्रता युक्त पक्षी हैं एक समान वृक्ष को स्वाद पूर्वक भोगता है। दूसरा न भोगता हुवा चारों ओर अर्थात् बाहर-भीतर सर्वत्र प्रकाशमान् हो रहा है। वास्तव में उसका कार्य है न कारण न उसके समान या कोई अधिक है। इसकी पराशक्ति बहुत प्रकार से सुनते हैं। उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्तबल और अनन्त क्रिया है।

अपाणि पादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः।
सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

परमेश्वर बिना हाथ पैर के अपनी शक्तिरूप हाथ पैर द्वारा सबका रचयिता ग्रहणकर्ता तथा व्यापक होने से अधिक बेगवान् है। वह आँख के गोलक के बिना यथावत् देखता है,

वह कान के विना सब को बात सुनता है, वह अन्तःकरण नहीं रखता परन्तु सब जगत् को जानता है और उसका जानने वाला कोई भी नहीं है। उसी को सनातन, सब से श्रेष्ठ तथा सब में परिपूर्ण होने से पुरुष कहते हैं। वह गुण सतोगुण प्रधान माया की उपाधि सहित ईश्वर भाव को प्राप्त होता है। ईश्वर का लक्षण योग शास्त्र में यों कथन किया है—

क्लेशकर्मविपाकाशैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

जो अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट, मिश्र फलदायक और कर्मों की वासना से रहित है वह पुरुष परिपूर्ण जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है। जब ईश्वर में यह संकल्प उत्पन्न होता है कि मैं एक से बहुत होऊँ तब उसमें दो भेद प्रतीत होते हैं एक जड़ दूसरा चैतन्य। जिस प्रकार पिता के कहने से इकलौते पुत्र श्वेतकेतु ने सूक्ष्म शस्त्र द्वारा वट के बीज के सर्वावरण पृथक् किये तब पिता पूछता है कि इसमें तू क्या देखता है। तब पुत्र बोला इसमें मैं और तो कुछ नहीं देखता एक विद्युत गति करती हुई ज्ञान से प्रतीत होती है। उपजने का समय था, पिता बोला अब क्या देखता है तो पुत्र ने कहा अब दो परमाणु सूक्ष्म चिकने २ इस लहलहाती हुई जो ऊपर नीचे को उछलती सी विदित होती है उसके समीप आ गये हैं। और ऐसा भी विदित होता है कि यही विद्युत वृक्ष की मूल और शाखायें पत्र पुष्प वरञ्च सब ही

वृक्ष रूप में परिणत होवेंगी । पिता ने कहा हे पुत्र ! इसी प्रकार परमेश्वर में संकल्प की शक्ति जब जगदाकार होने को होती है तदनन्तर एक महान् प्रकाश जिसे कि सतोगुण अथवा सम्पूर्ण ज्ञान कहते हैं प्रकाश होता है । तत्पश्चात् ज्ञेय के दो भेद हो जाते हैं जड़ और चैतन्य, प्रकृति और पुरुष । यह सम्पूर्ण संसार रूपी वृक्ष परमेश्वर के संकल्प का ही प्रकाश है । संकल्प ही इसका मूल अर्थात् आदि और अन्त है । जो ज्ञान स्वरूप है, चैतन्य स्वरूप है, धैर्यरूप है, जो सम्पूर्ण विश्व में विश्व स्वरूप हुई एक अमृत स्वरूप ज्योति है, जिसके बिना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन ईश्वर का संकल्प रूप ही जो जावे । हे प्रभो ! मेरी इच्छा कुछ नहीं तेरी इच्छा पूर्ण होवे जो अपनी इच्छा को मिटा कर ईश्वरेच्छा की पूर्ति के निमित्त दानाध्ययन तपादि करते हैं वह सम्पूर्ण शक्तियों में कार्य करते हुवे दृष्टिगोचर होते हैं और अन्त में परमेश्वर के प्रेम में संलीन हो कर अनन्त अपार सच्चिदानन्द रूप होकर शान्त हो जाते हैं । सन्त मत में अपार, अनन्त, सुख स्वरूप परमेश्वर से एक आनन्द की मौज अर्थात् मर्जी उठ कर उसमें अनामलोक का प्रकाश कर अलख, अगम लोकों का रूप धारण करती हुई सत्य लोक, भंवर गुफा, महाशून्य, दशवां द्वार, त्रिकुटी मण्डल, बंकनाल में होकर सहस्रदल कमल में प्रवेश करती है। उसी को कबीर आदि महात्मा राधा या श्रुति नाम से कथन करते हैं । यह एक परमेश्वर की मौज है जो उससे पृथक् होकर बिचारी भटकती

फिरती है। जब परमेश्वर अर्थात् गुरु के शब्द रूपी अश्व पर सवार होती है और द्वैत के भय का चाबुक लगा देती है तब मण्डलों को भेदन करती हुई गगन में चली जा रही है—

गगन में घोड़ी जाय चली रे डाटे ते डटती नाय ।। टेक ।।
कीड़ी चाली सासरे नौ मन सुरमा सार।
हाथी लिया गोद में ऊँट लटकता जाय ।।
बच्छा गऊ के पेट में हठरी हाठ बिकाय।
सुगरा होय तब समझ परत है नुगरे की गम नाय ।।
दशों दिशा में अनहद बाजे घोर रही नभ छाय।
रिमझिम २ ज्योति झलके आनन्द हिये न समाय ।।
परमानन्द गगन घन घोरे अमृत बरसे आय।
कहें कबीर सुनो भाई साधो आवागमन नसाय ।।

तब यह पुरुष, जीवात्मा, जिज्ञासु या श्रुति किसी नुकते में अपने आपको सकोड़ कर ध्यान द्वारा हलकी हो जाती है तो कीड़ी की तरह सूक्ष्म होकर, मन रूपी हाथी को गोद में लेकर अहंकार रूपी ऊँट को लपेटे जाती है और विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति अर्थात् शम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान और श्रवण मनन और निदिध्यासन, तत्व पद का लक्षार्थ और गुरु का ध्यान यह मोक्ष का देने वाला है।

आत्मा का तत्व कृति है और कृति ही समग्र अस्तित्व है। मेरा आत्मा अपने ज्ञान के विषय को जानने से उसे उत्पन्न करता है और जानता है क्योंकि यह काम करता है। हमें प्रतीत

होता है कि हमारी आत्मा से पृथक् भी कुछ है। यह केवल भ्रम है। हमारे आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि यह अपने ज्ञान अथवा विचार में अनात्मा को उत्पन्न करके अपने से पृथक् समझता है। प्रत्येक विचार में अहं अनहं को स्थापित करता है और अहं अनहं का सम्बन्ध नियत करता है। ज्ञान अहं का नहीं और न ही अनहं का प्रत्युत अहं अनहं के सम्बन्ध का नाम है। सत्य पदार्थ न अहं है न अनहं प्रत्युत निरपेक्ष है। अहं और अनहं आत्मा और अनात्मा दोनों का श्रोत है। निरपेक्ष अपना विकाश दृश्य जगत् में करता है। प्रथम अवस्था में प्रकृति है जिसमें किसी प्रकार का भेद नहीं होता। इस अवस्था में प्रकृति गुरुत्व रखती है और शक्ति आकर्षण का रूप धारण करती है। इससे उच्च दशा वह है कि जिसमें प्रकृति के भेद प्रतीत होने लगते हैं। अब जो परिवर्तन प्रकृति में होता है वह पदार्थों की आन्तरीय अवस्था को भी परिवर्तित कर देता है। एक अवस्था दूसरी से अधिक घनिष्ठ होती है और धारों का प्रत्यय इन से आगे बढ़ अपने आपको जीवात्मा के स्वरूप में प्रकाशित करता है। निरपेक्ष अपनी सिद्धि के लिए इन रूपों को धारण करता है। जिस प्रकार जल तरंग समुद्र से पृथक् अस्तित्व नहीं रखते प्रत्युत समुद्र जल के ही विशेषाकार हैं उसी प्रकार जितने जीवात्मा जगत् में हैं वह सब उस निरपेक्ष के ही नाना रूप हैं। वास्तविक अस्तित्व उस निरपेक्ष का ही है। जो कुछ बाह्य जगत् वा जीवात्माओं में हो रहा है उस

निरपेक्ष का ही प्रकाश है, ब्रह्माण्ड का इतिहास उस निरपेक्ष का जीवन चरित्र है जो वह आप लिख रहा है। अच्छे-बुरे का भेद वास्तव में कोई हस्ती नहीं रखता। जब तक हम भ्रम में हैं तब तक ऐसे मिथ्या विश्वासों में ग्रसित होते हैं। मनुष्यात्मा स्वतन्त्र होना चाहता है और यह स्वतन्त्रता ललित कला, सौध निर्माण, चित्रकारी, संगीत, कविता, धर्म और तर्क से मिल सकती है। ललित कला के सम्मुख हम अपने आपको भूल जाते हैं और एक सीमा तक ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। मनुष्य का सारा जीवन चेष्टा का ही प्रकाश है। जब कभी हम चेष्टा करते हैं तो किसी त्रुटि को दूर करने के लिए करते हैं और त्रुटि दुःखों का मूल है। समग्र जीवन दुःखों से भरा हुवा है जब एक न्यूनता दूर होती है तो स्वाभाविक एक नई न्यूनता उत्पन्न हो जाती है। विषयों की तृप्ति से अपने आपको शान्त करना ऐसा ही सम्भव है जैसे घी के छींटों से अग्नि का बुझाना। हम चाहते हैं आत्मा स्वतन्त्र हो, आत्मा अमर हो, संसार में परमात्मा का राज्य हो। क्योंकि स्वतन्त्रता और सौन्दर्य विवेकिनी शक्ति का सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य बाह्य पदार्थों में नहीं प्रत्युत हमारे आत्मा में विद्यमान है। जिस तरह आत्मा बाह्य जगत् पर अपने नियमों का प्रभाव डालता है और विषयों को कार्य-कारण बनाता है और गुण का परिमाण देता है उसी तरह हमारा आत्मा सौन्दर्य विवेकिनी शक्ति के रूप में पदार्थों को सुन्दर बनाता है। जो कुछ मुझे भासता है वह सुन्दर है। यदि हमारे आत्मा

में ज्ञान और कृति दोनों अंग होते तो ब्रह्म से मेल होने की कोई सम्भावना न थी। किन्तु हमारे आत्मा में एक और भी अंग सौन्दर्य विवेचन शक्ति है। सौन्दर्य बुद्धि उस द्वैत का नाश कर देती है जो ज्ञान और कर्म की अवस्था में विद्यमान् रहती है। सौन्दर्य, विवेक और धर्म एक ही हैं। तर्क से हम परमात्मा का चिन्तन कर सकते हैं और सौन्दर्य हमें साक्षात् ब्रह्म का दर्शन कराता है। वह मनुष्य जो उत्पन्न हुवे पदार्थों के सौन्दर्य को नहीं देखता अन्धा है। वह मनुष्य जो ईश्वरीय ध्वनि को श्रवण नहीं करता बहरा है। वह मनुष्य जो इन सकल पदार्थों को निरीक्षण करके भी धन्यवाद गायन नहीं करता वह गूँगा है। जीवन का आदर्श यह है कि हम अपनी पृथक् हस्ती का त्याग कर दें और अपने देश को जहां से हम आये हैं फिर जायं अर्थात् ब्रह्म में जिससे उत्पन्न हुवे हैं लीन हो जावें। यह ही अन्तिम आदर्श है। अच्छे कर्म हमें इस आदर्श तक नहीं ले जा सकते। किन्तु वह आरम्भिक सोपान है। उनके पीछे विचार की मंजिल आती है। विचार भी परमात्मा का शुद्ध स्वरूप नहीं दिखलाता। एक सीमा तक हम इसे साथ ले जाते हैं। उसके पश्चात् इसका त्याग कर देते हैं। उसी प्रकार एक स्थान पर पहुँच कर हम कर्मों और विचारों को छोड़ देते हैं। वह हमें हमारे गृह की ड्योढी तक ले जाते हैं इससे आगे जाने का इनका अधिकार नहीं। अगली और अन्तिम मञ्जिल भक्ति और योग की सहायता से पूरी होती है। इस अवस्था

में मेरे तेरे का भेद जो कर्म और ज्ञान के समय विद्यमान् था जाता रहता है। जोव अपने आपको ब्रह्म से पृथक् नहीं समझता और जिस प्रकार जल बिन्दु जिन्हें सूर्य की किरणें समुद्र की गोदी से पृथक् कर देती हैं बरसों के भ्रमण के पीछे फिर समुद्र में जा मिलती हैं उसी प्रकार हम सारी तपस्या के पीछे परमात्मा में लीन हो जाते हैं। वह अवस्था मनुष्य के अपने यत्न का परिणाम नहीं होती वरञ्च परमात्मा की कृपा से प्राप्त होती है। वेद में परमात्मा की प्राप्ति का सुगमोपाय इस प्रकार वर्णन किया है—

स्वप्नमाया यथा दृष्टं गन्धर्वं नगरं यथा।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः॥

जैसे स्वप्न की माया गन्धर्व नगर दृष्टिमात्र होता है इसी प्रकार यह सम्पूर्ण संसार है ऐसा विद्वानों ने निश्चय किया है।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तो इत्येषा परमार्थता॥

अतएव वास्तव में न संसार की उत्पत्ति है, न प्रलय होता है, न कोई बद्ध और न कोई मुक्ति के साधन हैं यही तत्वज्ञान है।

निश्चितायां यथा रज्वां विकल्पो विनिवर्तते।
रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्मविनिश्चयः॥

जिस प्रकार रज्जु के निश्चय होने पर सर्प रूप संशय

निवृत्त होकर यह निश्चय हो जाता है कि यह रज्जु ही है। इसी प्रकार आत्मत्व के निश्चय होने से यह संसार रूप द्वैत नष्ट हो जाता है। क्योंकि इन्द्रियों के मोह-जाल से यह संसार रूप द्वैत प्रतीत होता है वास्तव में नहीं। यह उस परमात्मदेव की माया है जिससे यह जीव मोह को प्राप्त हो रहा है। जिस प्रकार बालकों को गगन मलिन प्रतीत होता है इसी प्रकार अज्ञानियों को शुद्धात्मा जीवादि भेदों से मलिन प्रतीत होता है। और जैसे स्वप्न के जीव स्वप्न में ही उत्पन्न होते हैं और स्वप्न में ही मर जाते हैं इसी प्रकार यह जाग्रत के जीव हैं भी और नहीं भी हैं अर्थात् मायामात्र से हैं और वास्तव में ज्यों के त्यों बने तने ब्रह्म हैं। जिस प्रकार उपाधि भेद द्वारा महाकाश से घटाकाश बन जाता है इसी प्रकार तत्त्व ब्रह्म से माया की उपाधि द्वारा जीव बन जाते हैं और घटादि के नष्ट होने से जैसे घटाकाश आकाश में लय हो जाता है इसी प्रकार पूर्वोक्त उपाधियों के लय हो जाने से जीव ब्रह्म से मिल जाते हैं। जो द्वैतवादी यह शंका करें कि निराकार ब्रह्म सारा ही जगत् रूप बन गया अथवा आधा ? यदि सारा ही बन गया तो अब शेष ब्रह्म नहीं रहा जिसके साथ मिलकर जीव ब्रह्म बने। यदि उसका कुछ भाग जगत् रूप बन गया तो ब्रह्म निराकार न रहा। इस शंका से वादी पर ही दोषारोपण होता है क्योंकि वादी प्रकृति को निराकार मानता है। उसके मत में यदि परमाणुओं को निरवयव माना जाय तो दो के मिलने से एक स्थूलता नहीं होनी

चाहिये और यदि साकार मानें तो परमाणु नित्य नहीं हो सकते, क्योंकि साकार पदार्थ नित्य नहीं हो सकता। यह दोष प्रकृति तथा परमाणुओं को कारण मानने वाले के मत में दुर्वार है और हमारे मत में यह दोष न्यून है। क्योंकि हमारे मत में जगत् माया का परिणाम और रज्जु सर्प के समान ब्रह्म का विवर्त है और जो निराकार है वह जगत् रूप नहीं हो सकता इसलिए निराकार से साकार होने का दोष नहीं आता और यदि कोई कहे कि ऐसा पदार्थ संसार में प्रतीत नहीं होता तो उत्तर यह है कि संसार के सम्पूर्ण पदार्थ ही ऐसे हैं। जैसा कि एक लिखता है कि प्रथम एक ही पदार्थ भिन्न-भिन्न जातियों के (परमाणु) पशुओं के आत्माओं में भिन्न-भिन्न अनुभव उत्पन्न करता है। दूसरे एक ही जाति की भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की दशा में यह अनुभव भिन्न होते हैं। तीसरे एक पुरुष की अवस्था में भी भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रिय एक ही अनुभव नहीं देते। एक फल जो देखने में अति सुन्दर प्रतीत होता है बुरे स्वाद वाला हो सकता है। चौथे हमारी वर्तमान दशा स्वास्थ्य, रोग, थकान आदि पर निर्भर है। पांचवें हमारे पास अनुमापक तैयार नहीं जिसकी सहायता से हम किसी विशेष दशा को परिमाणिक दशा कह सकें। अब यदि ज्ञान के विषय की बाबत सोचें तो देखते हैं कि एक-एक ही पदार्थ भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न अनुभव उत्पन्न करता है। रेत का एक परमाणु कठोर है परन्तु रेत का ढेर नरम है। छठे पदार्थों का अन्तर

और स्थान हमारे ज्ञान पर प्रभाव डालते हैं। एक टीला जो दूर से स्वच्छ साफ प्रतीत होता है निकट आने पर ऊंचा-नीचा प्रतीत होता है। सातवें जो अनुभव हमारे आत्मा में पदार्थ उत्पन्न करते हैं उनका निर्भर इस बात पर भी होता है कि हम इन पदार्थों को बहुधा देखते रहते हैं या नहीं। प्रसिद्ध कथा के अनुसार राजा की कन्या कुछ दिन खटीकों के घर में रह कर कहती है कि उसने घर को दुर्गन्ध रहित कर दिया है। आठवें इस ज्ञान का निर्भर पदार्थों पर भी होता है। पेड़ा खाने के पश्चात् शर्बत फीका प्रतीत होता है। नवमें हम पदार्थों को किसी न किसी मध्यस्थ में से देखते हैं और यह नहीं कह सकते कि उसका कुछ प्रभाव पड़ता है या नहीं। सत्यासत्य धर्माधर्म के विषय में निश्चय करते हुवे देश और जाति की मर्यादा और समाज के विचार भी हमारे आत्मा पर प्रभाव डालते हैं। यह दोष प्रत्यक्ष में है। अनुमान प्रत्यक्ष पर निर्भर है इसलिए वह भी कच्ची नींव पर है। इसके अतिरिक्त मनुष्यों की मतियों में इतना भेद होता है कि हरएक प्रतिज्ञा को सिद्ध करने की आवश्यकता है। और इस क्रम का कहीं अन्त नहीं होता अर्थात् प्रत्येक विषय का विरुद्ध भी सिद्ध हो सकता है। प्राकृत द्रव्य का विचार सर्वथा कल्पना में है। हमें केवल गुणों का ज्ञान होता है। गुणों के समुदाय को ही द्रव्य माने अर्थात् गुणों को ही द्रव्य माने। तो प्रश्न होता है कि गुणों का स्थान कहां है। गुण दो प्रकार के होते हैं मुख्य और गौण, प्रथम हम

गौण को लेते हैं। साधारण पुरुष कहेगा कि रंग गन्धादि आत्मा से बाहर विद्यमान हैं। थोड़ा सा तर्क भी बता देता है कि यह विचार यथार्थ नहीं। बाह्य जगत् में एक पदार्थ है, मैं उसके समीप से गमन करता हूं और घ्राण बन्द कर लेता हूं। गृद्ध दूर से उसी मनोरंजक गन्ध से आकृष्ट हो कर उसकी ओर आता है। तीसरा जीवधारी पास से गुजर जाता है और उस पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। एक पुरुष मेरे रुमाल को हरा देखता है। मैं पीलिया रोग के कारण पीत देखता हूं। तीसरा पुरुष वर्णान्ध होने से उसे श्वेत देखता है। इसी प्रकार एक ही पुरुष भिन्न २ अवस्थाओं में एक ही पदार्थ से भिन्न २ अनुभव ग्रहण करता है। अब यदि यह गुण बाहर अस्तित्व रखते हैं तो हमें मानना पड़ता है कि वह एक ही देश और काल में एक से अधिक भिन्न या विरोधी रूप धारण करते हैं। यह हमारी बुद्धि स्वीकार नहीं करती यदि यह कहा जाय कि वास्तविक रंग और गन्ध हममें से किसी ने नहीं जाना तो उत्तर यह है कि वह ऐसे गुण को जिस का ज्ञान किसी जीवधारी को नहीं, नहीं समझ सकता। यह एक सामान्य प्रत्यय है। यदि इन अनुभवों में एक अनुभव बाह्य गुण का वास्तविक ज्ञान है तो हम निश्चय नहीं कर सकते कि वह अनुभव कौन सा अनुभव है और हम सन्देहवाद के दलदल में फंस जाते हैं। इन विचारों से विवश हो कर गौण गुणों की बाह्य हस्ति से इन्कार करना पड़ता है। इसी प्रकार मुख्य गुणों के विषय में भी देखते हैं कि जिस

प्रकार एक पदार्थ भिन्न २ आकारों में भी दिखाई देता है। दूर से एक पहाड़ो साफ प्रतीत होतो है, निकट आने पर ऊंची-नीची दीखतो है अनुदर्शक यन्त्र की सहायता से खुदंरा प्रतीत होता है। विस्तार के सम्बन्ध में जो पर्वत का टुकड़ा मुझे छोटा प्रतीत होता है वह एक छोटे जीवधारी को एक पर्वत दिखाई देता है। तो प्रश्न यह है कि यह टुकड़ा बड़ा है या छोटा विपक्षी कहेगा कि बड़ा-छोटा सापेक्ष शब्द है। यदि हम इनका व्यवहार भी न करें तो इतना तो कह सकते हैं कि उसका विस्तार है। उत्तर–उस ऐसे विस्तार को जो न बड़ा है न छोटा। समझ नहीं आती। यह सामान्य प्रत्यय है और वह ऐसा प्रत्यय बना नहीं सकता। सम्पूर्ण पदार्थ आज तक की परीक्षा से अनिर्वचनीय सिद्ध हुवे हैं। क्योंकि मन और इन्द्रियां सत्य ज्ञान किसी को भी नहीं देते और यह जगत् इन्द्रजाल अर्थात् इन्द्रियों का जाल कल्पा हुवा है वास्तव में नहीं। और जो प्रतिवादी परमाणुओं को अवयव रूप मानता है अन्य अवयवों से रहित सत्तामात्र मानता है तो वह विभक्त हो सकते हैं। क्योंकि मन में भी जिसका अस्तित्व होता है वह विभक्त हो सकता है। इसलिए सर्व भ्रमों से रहित होना चाहिये।

पंच भ्रम निवर्त्तक दृष्टान्त पंचक

जीवात्मा परमेश्वरादिभिन्नः।

जीवात्मा परमेश्वर से भिन्न है।

एकात्मनि प्रतीयमानं कर्तृत्वादि वास्तवम् ।

आत्मा में प्रतीत हुवा कर्तापन आदि वास्तविक सिद्धान्त ही है।

शरीरत्रयावच्छिन्न आत्मा सङ्गी ।

तीनों शरीरों से अवच्छिन्न (युक्त) हुवा आत्मा संग वाला है।

जगत्कारणत्वेन ब्रह्मणो विकारित्वम् ।

जगत् कारण होने से ब्रह्म के विकार भाव है।

कारणाद्भिन्नस्य प्रपञ्चस्य सत्यत्वम् ।

कारण से भिन्न हुआ प्रपञ्च-जगत् का भी सत्यपना है। इस प्रकार से यह पांच भ्रम कहलाते हैं।

बिम्ब प्रतिबिम्ब दृष्टान्तेन भेद भ्रमो निवर्तदीयः ।

बिम्ब प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त करके भेद भ्रम निवर्तन करना चाहिये। जैसे सूर्य के बिम्ब से जल में गिरा हुआ प्रतिबिम्ब भिन्न नहीं है। ऐसे भेद भ्रम दूर करना।

स्फटिकलोहितदृष्टान्तेन पारमार्थिकर्तृत्वभ्रमो निवर्तनीयः ।

मणि में अर्थात् कांच में जैसे दूसरी वस्तु का लाल रंग दीखता है इस दृष्टान्त करके आत्मा का कर्तापन भ्रम दूर करना।

सूर्याग्न्युत्पादकादर्शदृष्टान्तेन विकारित्वभ्रमो निवर्तनीयः ।

जैसे सूर्य को और अग्नि को उत्पन्न करने वाला शीशा

चकमक इन दोनों के योग से अग्नि उत्पन्न करता है वहां सूर्य कारण है वह विकार रहित है विकारवान शीशा ही है ऐसे माया ही विकार वाली है इस दृष्टान्त करके विकारित्व भ्रम दूर करना।

घटाकाशदृष्टान्तेन संगीति भ्रमो निवर्तनीयः।

जैसे घट के आकाश में महाकाश बन्धा हुवा नहीं है इस घटाकाश दृष्टान्त करके संगित्व भ्रम दूर करना।

सुवर्णकटकलोहखड्गादि दृष्टान्तेन कारणाद्भिन्नत्वेन प्रतीयमानप्रपञ्चस्य सत्यत्वभ्रमो निवर्तनीयः।

सुवर्ण के कुण्डल, लोहे की तलवार, सोने और लोहे से भिन्न सत्य नहीं हैं प्रत्युत सोना और लोहा रूप ही हैं। इस दृष्टान्त करके कारण से भिन्नपना करके प्रतीत होते हुए जगत् का सत्यत्वपने का भ्रम निवर्तन करना।

ब्रह्मणि जगद भ्रान्त्या प्रतीयते इत्यत्र-शुक्तौ रजतं, रज्वौ सर्पः, स्थाणौ पुरुषः, गगने नीलतादि, मरीचिकायां जलम्।

ब्रह्म विषे जगत् भ्रांति करके प्रतीत होता है, इसमें जैसे सीप में चांदी, रज्जु में सर्प, स्थाणु अर्थात् खम्भ में पुरुष, आकाश में नील वर्णादि रङ्ग, मरीचिका अर्थात् चमकते हुए कल्लर-रेत में जल, यह सब मिथ्या हैं, इसी भान्ति जगत् भी मिथ्या है। इस प्रकार के विचार द्वारा जब जीव जान लेता है कि

जगत् मिथ्या है। और मैं वही हूँ तब उसका सम्पूर्ण दुख निवृत्त हो जाता है। जैसा कि:—

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्धचते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्धचते तदा॥

अनादि काल से प्रवृत्त माया मोह करके सोया हुआ अर्थात् यह मेरा है मैं इसका हूँ ऐसे प्रकृति के सम्बन्ध में वर्णाश्रम के अभिमान द्वारा सुखी हूँ, दुःखी हूँ, दीन हूँ, समृद्ध हूँ इत्यादि स्वप्नों को देखता हुआ जब जब जागता है अर्थात् जब अपने स्वरूप को पहचानता है तब अज, अनिद्र, अस्वप्न और अद्वैतात्मा अपना आपा सब को जानता है।।

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेन्नात्र संशयः।
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः॥

प्रपञ्च मिथ्या ज्ञान आदि विद्यमान हैं तो निःसन्देह निवृत्त भी होंगे। क्योंकि जब तक जीव माया मोह में बद्ध है तब तक द्वैत है परमार्थ में तो केवल अद्वैत ही है। श्रुति में कहा है— 'इन्द्रो मायाभिः पुररूपमीयते' इन्द्र माया से बहुत रूप धारण करता है परन्तु यह विषय ऐसे मनुष्यों की समझ में नहीं आता जो इस सवैया में वर्णन किये हैं—

जहां खान न पान नहीं सुख है वह मोक्ष कहो कत आवत कामा।
परलोक नहीं सुख होय कहां उल्टे सुत नार तजावत धामा।
जग बन्धन के हित व्योंत रची जन धूरत वेद धरे तिहि नामा।

शरधा सुनि यों पथ वेद तजे सु पखण्डन के वश ह्वै गई वामा ॥

परन्तु जब वस्तु विचार उत्पन्न होता है तो उसमें यह भाव उत्पन्न होता है—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ कठ

हे अन्तक ! जिन भोगों का आप मुझे लालच देते हैं वह सदा रहने वाले नहीं हैं और यह सब इन्द्रियों के तेज को जीर्ण करने वाले हैं । और तो क्या यह जीवन भी अल्प है जो आप मुझे देते हैं । फिर किस की आस्था में मैं इन भोगों को अपने जीवन का आधार बनाऊँ । इसलिये यह राग रंग तथा गाना-बजाना और सवारियां आपके लिये ही शुभ हों मैं तो एक अपार सुख स्वरूप ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरे की वाञ्छा नहीं करता ।

भव भोग विलास रहे ना सदा यह जीवन आरुणि तुच्छ निहारा ।
गण इन्द्रियें दाह करें विषयानल जाय पड़े भव सागर धारा ॥
वस्तु विवेक करें जन जो तिनके मन में यह होत विचारा ।
जब नौन तजै मुख मौन भजें शठ सूझत तो ही तभी जग सारा ॥

यह सब भाव मिटें तब ही जब कोविद की नर संगति पावे ।
भाष्य शारीरक आदि पढ़े कठ केन कथा मति संग मिलावे ।
संयम ध्यान समाधि करे यम नेम निरन्तर लक्ष्य बनावे ।
ब्रह्म ही ब्रह्म चहूं दिशि देखत या विधि से पद निर्भय पावे ॥

ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुण एक निरंजन और न भासे।
ब्रह्म अखण्डित है अध ऊपर बाहर भीतर ब्रह्म प्रकासे।
ब्रह्म ही सूक्ष्म स्थूल जहां लग ब्रह्म ही साहिब ब्रह्म ही दासे।
सुन्दर और कछू मत जानहुं ब्रह्म ही देखत ब्रह्म तमासे॥

मोक्ष वाक्यार्थ ज्ञानाधीन है और वाक्यार्थ पदार्थ ज्ञानाधीन। इस कारण तत्पद का निरूपण करते हैं। तत्पदार्थ का लक्षण दो प्रकार का है तटस्थ और स्वरूप लक्षण। सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण ब्रह्म है 'जन्माद्यस्य यतः' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' सत्य ज्ञान और अनन्त ब्रह्म है। एषोस्य परमानन्द इत्यादि। फिर स्वरूप लक्षण दो प्रकार का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ। मायोपहित चैतन्य तत्पद का वाच्यार्थ है और माया विनिर्मुक्त चैतन्य तत्पद का लक्ष्यार्थ है। चैतन्य और अचैतन्य की कल्पना माया है।

इदं सर्वं यदयमात्मा। आत्मैवेदं सर्वम्। ब्रह्मैवेदं सर्वम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म, वासुदेवः सर्वमिति।

नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, परमानन्द अद्वय ब्रह्म चेतन है और अज्ञानादि जड़ जाति अचेतन है। अपार सुख स्वरूप ब्रह्म है। अज्ञान त्रिगुणात्मक है। सदा सत् दोनों से विलक्षण अनिर्वचनीयभाव रूप अज्ञान है। अज्ञान दो प्रकार का है माया और अविद्या। शुद्ध सत्व प्रधान अविद्या है। शक्ति भी दो प्रकार की है। ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति। रज तम से अनभिभूत सत्व ज्ञान शक्ति है। फिर क्रिया शक्ति दो प्रकार की है।

आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति। रज और सत्व से अनभिभूत तम आवरण शक्ति है। तम और सत्व से अनभिभूत विक्षेप शक्ति है। और यही आकाशादि प्रपंच की उत्पत्ति का हेतु है। आवरण शक्ति प्रधान अविद्या और विक्षेप शक्ति प्रधान माया है। मायोपहित चैतन्य ईश्वर जगत का कारण अन्तर्यामी कहलाता है और वही तत्पद का वाच्यार्थ है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

अविद्योपहित चैतन्य जीव प्राज्ञ कहलाता है। अविद्या प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव और मायोपहित चैतन्य ईश्वर अर्थात् वन के समान अज्ञान समुदाय समष्टि है और उससे उपहित चैतन्य ईश्वर है। और वृक्षों के समान प्रत्येक अज्ञान व्यष्टि है और उस से उपहित चैतन्य प्राज्ञ कहलाता है। अथवा कारणीभूत अज्ञानोपहित चैतन्य ईश्वर है और अन्तः करणोपहित चैतन्य जीव है।

सृष्टि क्रम निरूपण

—:—

कारणोपाधीश्वरः कार्योपाधि जीवः ।

ईश्वर ज्ञान शक्ति उपहित स्वरूप से जगत् का उपादान ऊर्ण नाभि के समान है । 'यथोर्ण नाभि सृजते गृह्यते च' उक्त लक्षण वाले ईश्वर से आकाश उत्पन्न होता है, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी ।

तस्माद्वा एतस्मादात्मनआकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी ।

इस द्वैतेन्द्र जाल रूप संसार का अज्ञानोपाधि वाला ब्रह्म कारण है । पुरुष भिन्न २ गुणकर्म स्वभाव वाले चेतन के किरण जिनमें पड़ते हैं ऐसे भाव पदार्थ प्राण के द्वारा उत्पन्न करता है । अर्थात् कारण से कार्य बनता है ।

विभूतिं प्रसवन्त्यन्ये मन्यन्ते सृष्टि चिन्तकाः ।
स्वप्न माया स्वरूपेति सृष्टि रन्यैर्विकल्पिता ॥

कोई सृष्टि पर विचार करने वाले ईश्वर की विभूति महिमा को सृष्टि कर्तृ मानते हैं और कोई स्वप्न माया स्वरूपा मानते हैं अर्थात् वास्तव मे नहीं किन्तु कल्पित है । कोई सृष्टि के विषय

में यह निश्चय करते हैं कि ईश्वर की इच्छा मात्र सृष्टि है। कोई काल चिन्तक काल से भूतों की उत्पत्ति मानते हैं।

भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे।
देवस्यैव स्वभावोयमाप्तकामस्य का स्पृहा॥

कोई जीवों के कर्मफल भोग के लिये सृष्टि मानते हैं। कोई ऐसा मानते हैं कि ईश्वर सृष्टि को बनाकर उसमें आप ही क्रीड़ा करता है। कोई कहते हैं कि वह आप्तकाम है उसको क्या इच्छा किन्तु उसका स्वभाव ही यह है कि वह सृष्टि को बनावे। तात्पर्य यह है कि सृष्टि वास्तव में है ही नहीं यह सब जो कुछ भान होता है ब्रह्म ही ब्रह्म है।

विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केनचित्।
उपदेशादयं वादो ज्ञाने द्वैतं न विद्यते॥

यदि किसी से कल्पित हो तो विकल्प-सन्देह निवृत्त हो सकता है, उपदेश से यह भेद वाद है। ज्ञान होने पर द्वैत भेद नहीं रहता। इसी कारण से वेद में सृष्टि क्रम नहीं बान्धा। जहां तहां सृष्टि क्रम चला कर अद्वैत ही सिद्ध किया है। जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत्
किंचन मिषत्, स ईक्षत लोकान् सृज इति।

निश्चय करके यह ब्रह्म आत्मा सृष्टि से पूर्व एक ही था उससे भिन्न कुछ भी न था। उसने इच्छा की कि मैं लोकों

को रचूँ। यहां उपक्रम करके उसने लोकों को अम्भ की अवस्था में रच मरीचि तेजोमय की अवस्था, प्रकृति की अवस्था, द्यौ अन्तरिक्ष की अवस्था, और लोक, लोकपाल, जलों से विराट पुनः तपा कर अण्डे के सदृश विराट का मुख खोला। उसके मुख से वाणी, वाणी से अग्नि उत्पन्न हुई। पुनः नासिका भेद को प्राप्त हुई। नासिका से प्राण, प्राण से वायु उत्पन्न हुवा। फिर आँखें भेद को प्राप्त हुईं। आंखों से आदित्य उत्पन्न हुवा। फिर कान भेद को प्राप्त हुवे। कर्णों से श्रोत्रेन्द्रिय, श्रोत्र से दिशायें। फिर त्वचा भेद को प्राप्त हुवा, त्वचा से लोम, लोमों से औषधि, औषधियों से बनस्पति उत्पन्न हुई। इसी प्रकार हृदय भेद को प्राप्त हुवा, हृदय से मन, मन से चन्द्रमा। फिर नाभि भेद को प्राप्त हुवा, नाभि से अपान, अपान से मृत्यु उत्पन्न हुवा। फिर शिश्न उपस्थेन्द्रिय भेद को प्राप्त हुवा, शिश्न से वीर्य, वीर्य से जल उत्पन्न हुवा। यजुर्वेद में लिखा है—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो सूर्योऽजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥

विराट के मन से चन्द्रमा, आँखों से सूर्य, कानों से वायु अथवा प्राण, मुख से अग्नि, कानों से दिशा उत्पन्न हुई। यह देवता जब संसार की अवस्था में परिणत हुवे तब उनको भूख-प्यास से संयुक्त किया। तब वह परमात्मा से बोले कि हमारे लिये आप कोई स्थान नियत करें जिसमें हम ठहर कर भोग भोगें। तब उनके वास्ते गौ का शरीर लाया गया। वह बोले यह

हमारे योग्य नहीं। तब मनुष्य का शरीर लाया गया। तब देवता बोले यह हमारे लिये शुभ है। भगवान् बोले तुम इसमें प्रवेश कर जावो। वायु प्राण होकर नासिका में प्रविष्ट हुवा, आदित्य चक्षु होकर आंख में प्रविष्ट हुवा, दिशा श्रोत्र होकर कानों में प्रविष्ट हुईं, ओषधि वनस्पति लोम होकर त्वचा में प्रवेश हुईं, चन्द्रमा मन होकर हृदय में प्रविष्ट हुवा, मृत्यु अपान होकर नाभि में प्रविष्ट हुवा, जल वीर्य बनकर उपस्थेन्द्रिय में प्रविष्ट हुवा। तब भगवान् से भूख प्यास बोले कि हमको स्थान नियत करो। भगवान् बोले इन देवताओं में तुमको स्थान नियत करता हूँ। तब भूख प्यास लगी तो परमात्मा ने इच्छा कर अपने प्रयत्न से जलादि पांच भूतों से अन्न उत्पन्न किया। तब उसने खाने की इच्छा की तो अन्न डर कर भागने लगा। उसने वाणी से पकड़ना चाहा, परन्तु वाणी उसे ग्रहण न कर सका। यदि वाणी उसे ग्रहण कर लेता तो कथन मात्र से ही तृप्त हो जाता। इसी प्रकार घ्राण से ग्रहण करना चाहा। उससे भी ग्रहण न कर सका। यदि घ्राण से ग्रहण कर लेता तो सूँघ कर ही तृप्त हो जाता। पुनः आँख से ग्रहण करना चाहा तो आंख से ग्रहण न कर सका यदि आंख से ग्रहण कर लेता तो दर्शन मात्र से ही तृप्त हो जाता। पुनः श्रोत्र से ग्रहण करना चाहा, श्रोत से भी ग्रहण न कर सका। यदि कर लेता तो श्रवण मात्र से ही तृप्त हो जाता। पुनः त्वचा से ग्रहण करना चाहा, पर ग्रहण न कर सका। यदि कर लेता तो स्पर्श से ही तृप्त हो जाता। तब उसने मन

से ग्रहण करना चाहा पर न कर सका, यदि मन से ग्रहण कर लेता तो ध्यान से ही तृप्त हो जाता। पुनः शिश्न से ग्रहण करना चाहा यदि कर लेता तो त्याग कर ही तृप्त हो जाता। तब उसने अपान द्वारा उस अन्न को ग्रहण किया। जो अपान वायु है वही अन्न द्वारा आयु की वृद्धि करने वाला है। फिर उसने विचारा मेरे बिना यह शरीर कैसे रहेगा, मैं इसमें किस मार्ग से प्रवेश करूँ। तब उसने इच्छा की, कि वाणी द्वारा बोलूँ, प्राण द्वारा सूँघू, नेत्रों द्वारा देखूँ, श्रोत्र द्वारा सुनूँ, त्वचा द्वारा स्पर्श करूँ तो मैं क्या हुवा ? तब वह सुषुम्ना द्वारा उसमें प्रवेश कर गया। तब उसका आनन्द का हेतु नान्दन नाम हुवा। उसको तीन अवस्था स्वप्न के सदृश मिथ्या भासने लगीं। वही परमात्मा जीव रूप से इसमें प्रविष्ट हुवा तब तत्वमस्यादि वाक्यों द्वारा यह कथन करता है कि मैं ब्रह्म हूँ और मैं ब्रह्म के अतिरिक्त किसी को नहीं देखता। इस कारण से उस परमात्मा का नाम इदन्द्र प्रसिद्ध है।

तं इदन्द्रं सन्तं परोक्षेणेन्द्र माचक्षते।

इस इदन्द्र को ही परोक्ष से इन्द्र कहते हैं। क्योंकि देवता परोक्ष से ही प्यार करते हैं। ईश उपनिषद के आरम्भ में अध्यारोप द्वारा ब्रह्म का जीव रूप से प्रवेश कथन किया तो अपने से भी भिन्न कुछ न देख कर मैं ही सर्वात्मा हूँ इस प्रकार कथन किया 'ततो अहं नामाभवत्' तब उसका अहं नाम हुवा। अब भी बुलाया हुवा पुरुष 'मैं हूँ' कहकर और कुछ कहता है। इस 'मैं'

नाम से इस प्रपंच से पूर्व आत्मा ने सब पापों को दग्ध किया। अब भी जो 'मैं सर्वात्म पुरुष हूँ' इस प्रकार जानेगा वह अपने सर्व पापों को नष्ट करेगा। वह भय को प्राप्त हुवा। तब उसने समझा मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं। इस ज्ञान से वह अभय हो गया। अब भी जो कोई जानेगा कि मेरे सिवाय दूसरा कुछ नहीं मैं ही सब कुछ हूँ वह अभय हो जायगा परन्तु वह अकेला प्रसन्न नहीं हुवा। अब भी अकेला प्रसन्न नहीं होता है। तब उसने अपने से भिन्न दूसरे का संकल्प किया। वह विराट इतना बड़ा था जितना रमण काल में स्त्री पुरुष एकत्र हुवे होते हैं अर्थात् प्रकृति शक्ति के साथ में मिला हुवा सीपी की तरह। तब उसने अपने आपको दो भागों में विभक्त किया। एक भाग की स्त्री हुई। स्त्री विचारने लगी की किस प्रकार मैं भोग की इच्छा से अपने से उत्पन्न कर रूपान्तर से लीन हो जाऊँ। तब 'सागौरभवत् वृषभ इतर' वह गौ हो गयी और दूसरा विचार हो गया। वह दोनों संग को प्राप्त हुवे। तब गौवें उपन्न हुईं। फिर वह घोड़ी बन गई वह घोड़ा। वह गधी बन गई वह गधा। तब परस्पर उनका सम्बन्ध हुवा। तब घोड़ा गधा खच्चर आदि उत्पन्न हुवे। तात्पर्य यह है कि इसी प्रकार वह बछड़ा वह बछड़ी वह भेड़ वह मींढा इसी प्रकार सब सृष्टि का ताना बना तना।

सोऽवेदहं वावसृष्टि रस्म्यहꣳ हीदꣳ सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत् सृष्टयाऽहाऽस्यै तस्यां भवति य एवं वेद ॥

इस प्रकार सृष्टि को रच कर उसने विचार किया कि सब प्रपंच अर्थात् इस जगत् का कर्ता मैं हूँ मेरे से अन्य कोई नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् मैंने ही उत्पन्न किया है। तब वह सृष्टिकर्ता हो गया। जो उक्त प्रकार से उसको सृष्टिकर्ता जानता है वह परमात्मा हो जाता है। पुनः परमात्मा ने हाथों से रगड़ कर और मुंह से फूक मार कर अग्नि को उत्पन्न किया। इस लिये इन में लोम नहीं जमते। यह यज्ञ हुवा और यज्ञ से सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई। यह महान् यज्ञ हुवा जैसा कि वेद में लिखा है।

तस्माद्यज्ञात्सर्व हुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशंस्ताँश्चक्रे वायव्या नारव्या ग्राम्याश्च ये॥

उस यज्ञ रूप परमेश्वर से सूक्ष्म द्रव्य उत्पन्न हुवे और नभचारी तथा बनवारी, पशु, वृक्ष सम्पूर्ण चराचर जगत् उत्पन्न हुवा। जलने के अमल को ही यज्ञ कहते हैं, 'यज्ञ' धातु देव पूजा संगीत करण और दान में आती है। इसका अर्थ प्रकाश करने की सामग्री और उसका मिलाना, दूसरे के अर्पण करना। सो इस प्रकृति से महान् यज्ञ हो रहा है। आकाश यज्ञ का कुण्ड है। और तो क्या ज्ञान भी तब ही होता है जब शब्द कान के ढोल पर अथवा मस्तिष्क के आवरणों पर आहूति कर दिया जाता है। तब ही जलने का अमल होकर ज्ञान प्रकाशित हो जाता है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि अनेक प्रकार की यज्ञ हैं—

द्रव्ययज्ञास्तपो यज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

इसलिये इन सम्पूर्ण पदार्थों को यज्ञ कहा है। यज्ञ विष्णु का भी नाम है। इसी यज्ञ पुरुष परमेश्वर से सम्पूर्ण वेद उत्पन्न हुवे हैं। वेद में लिखा है—

तस्माद्यज्ञात्सर्व हुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳ जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

उस सर्व पूज्य यज्ञ पुरुष परमेश्वर से ऋचा ऋग्वेद, साम-वेद, यजुर्वेदादि चारों वेद प्रकाशित हुवे। इसीलिये वेद आज्ञा देता है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणो यज्ञेन कल्पतां, वाग्यज्ञेन कल्पतां, मनो यज्ञेन, कल्पतां यज्ञो वै विष्णुः ॥

आयु यज्ञ के लिये अर्पण करो। चक्षु, श्रोत, मन, वाणी यज्ञ के लिये अर्पण करो। अपने आपे को, ब्रह्म को, ज्योति को, सुख को, अपने कर्तव्य कर्म को सब को परमात्मा के अर्पण करो। यही तुम्हारा धर्म है।

छान्दोग्य उपनिषद में लिखा है—

त्रयो धर्मास्कन्धाः यज्ञोध्यनदानमिति

धर्म के तीन स्कन्ध हैं। यज्ञ, अध्ययन और दान। गीता में भी कहा है—

यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्

मनु ने भी कहा है—

अध्ययनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥

अध्ययन ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वेद का पढ़ना ऋषि यज्ञ या ब्रह्म यज्ञ कहलाता है। पितृयज्ञ सुसन्तति उत्पन्न करना और माता पिता की सेवा करना, होम करना देवयज्ञ, बलि देना भूतयज्ञ और अतिथि सेवा करना नृयज्ञ कहलाता है। जो प्राणी गृहस्थाश्रम स्थित होकर इन पांच यज्ञों को नहीं करता तो धर्म के अनुकूल उसका न यह लोक और न परलोक ही सुधरता है।

न तिष्ठति तुयः पूर्वान्नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
सशूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥

जो दोनों सन्धियों में ईश्वरोपासना नहीं करता उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कामों से बाहर निकाल दें अर्थात् शूद्र समझें। सन्ध्या काल में जो हवन किया जाता है वह हुत द्रव्य प्रातःकाल तक वायु शुद्धि द्वारा हितकारी होता है। और जो प्रातःकाल होम किया जाता है वह सायंकाल पर्यन्त वायु की शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और आरोग्य का कारण होता है। इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है—

तस्मादहो रात्रस्य संयोगे ब्रह्मणः सन्ध्या मुपासीत ।

इसलिये दिन और रात्रि की सन्धी में अर्थात् सूर्योदय और

अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्नि होत्र अवश्य करना चाहिये। वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के कथन किये हुये शास्त्रों का जो अपमान करता है, उस वेद निन्दक नास्तिक को जाति और पंक्ति और देश से बाहर कर देना चाहिये।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य ज प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुर्साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

वेद, स्मृति वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेद द्वारा परमेश्वर प्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसको अपना आत्मा चाहता है जैसा कि सत्य भाषण आदि यह धर्म के चार लक्षण हैं, यानी इन्हीं से धर्माधर्म का निश्चय होता है। भगवान् व्यास जी कहते हैं--

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

जिसे तुम अपने लिये नहीं चाहते उसको दूसरे के लिए भी न करो। जिस प्रकार कोई तुम्हारा अपमान करे तो तुमको वह अप्रिय होता है। इसलिये तुम भी दूसरे का अपमान न करो

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद नेतरः॥

मन से वाणी और कर्म से सब का मित्र बना रहे और सबों के हित में रत रहे यही धर्म है और नहीं।

परापवादं न ब्रूयान्ना प्रियश्च कदाचन ।
न मन्यु कस्य दुत्पाद्य पुरुषेण सुखार्थिना ॥

सुखाभिलषित पुरुष को न तो किसी के साथ बैर करना चाहिये और न अप्रिय वाणी द्वारा किसी का अपवाद करना चाहिये । मन, वाणी और कर्म द्वारा सब भूतों में द्रोह रहित होना चाहिये । दुःखियों पर दया करनी चाहिये, परमेश्वर निमित्त धर्म की वृद्धयर्थ दान करना चाहिये यही सत्पुरुषों का सनातन धर्म है । जो कोई अपने आश्रम या गृह पर आवे तो उसको प्रेम भरी दृष्टि से देखना चाहिये, तत्पश्चात् मधुर वाणी से उसका सत्कार करना चाहिये कि आइये बैठिये, यह ही सनातन धर्म है । किसी प्राणी को पीड़ा न देनी चाहिये, सत्य मानना तथा सत्य भाषण करना चाहिये, क्रोध को परित्याग करना और ईश्वर निमित्त दान देना चाहिये । इस चार प्रकार के धर्म का सेवन करना ही सनातन धर्म है ।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियञ्चनानृतं ब्रूयादेश धर्मः सनातनः ॥

सत्य बोलो परन्तु वह प्यारा हो । यदि सत्य है परन्तु प्यारा नहीं है तब भी न बोलो । जिस प्रकार काणे को काणा कहना यद्यपि सत्य है तथापि अप्रिय होने के कारण न बोलना चाहिये । इसी प्रकार यदि असत्य प्रिय भी हो तब भी नहीं बोलना चाहिये यह ही सनातन धर्म है । गृहस्थियों को चाहिये कि

अपने बालक तथा बालिकाओं को विद्या का अभ्यास करावें और अपनी स्त्री को भोजनाच्छादनादि द्वारा प्रसन्न रख कर धर्म के अनुकूल उनका पालन करे। अच्छे पुरुष और अपने बन्धुओं की रक्षा अर्थात् पालना करें यह ही सनातन धर्म है। जो इसका परित्याग करेगा वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

जो सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के देने वाला और सुखों की वर्षा करने वाला धर्म है उसका जो पुरुष नाश अर्थात् लोप कर देता है, धर्म उसका लोप कर देता है। अर्थात् मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश कर देता है और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षा करने वाले की रक्षा करता है। इसलिए धर्म का हनन कभी नहीं करना चाहिये, इस डर से कि मरा हुआ धर्म कहीं हमको न मार देवे।

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्ष्यमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥

जिस सभा में अधर्म से धर्म और असत्य से सत्य सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं, मानों उसमें कोई भी जीता नहीं।

तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्व वर्णेषु साक्षिभिः।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः॥

आत्मा का साक्षी आत्मा और आत्मा की गति आत्मा है इसको जान कर हे पुरुष ! तू सब मनुष्यों का उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् सत्य भाषण कर जो कि तेरे आत्मा, मन, वाणी में है वह सत्य है और इसके विपरीत है वह मिथ्या भाषण है। परमात्मा ने अथर्व वेद में उपदेश दिया है।

सत्यमहं गम्भीरः काव्येन,
सत्यं जाते नास्मि जातवेदा।
न मे दासो न मे आर्य्यो महित्वा,
व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये॥

हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर सत्य स्वरूप महा गम्भीर सत्य विद्या के प्रकट करने से जातवेदा हूँ। मैं किसी दास तथा आर्य से पक्षपात नही करता हूँ जो मेरी आज्ञा का पालन करेगा उसका मैं उद्धार करूँगा।

सुविज्ञानाय विचिकित्से जनाय सच्चासच्च वचसि।
पश प्रधाते, तयोर्यत् सत्य मवति हन्त्यसत्॥

ज्ञान के लिये अथवा अज्ञान के लिये बाणी ही प्रभाव दिखलाती है। उन दो बाणियों में से सत्य पुरुष की रक्षा करती है और असत्य नाश कर देती है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघन्या॥

हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर तुम्हारे भीतर सहृदयता अर्थात् परस्पर सहृदय भाव रखना तथा मन की शुद्धता और अद्वेष को स्थापन करता हूँ। तुम एक दूसरे से परस्पर उसी प्रकार प्रीति का व्यवहार करो जैसे नये उत्पन्न हुए बछड़े से गौ प्यार करती है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पते मधुमतीं वाचं वदतु शान्ति वाम्॥

पुत्र पिता का अनुव्रत हो अर्थात् पुत्र पिता के सदृश सदाचार परायण होवे। माता के कारण पुत्र शुद्ध मन वाला होवे। पत्नी अपने पति से मधुर वाणी बोले। पति स्त्री को शान्तिकारी वाणी बोले।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रतो भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

भाई भाई से द्वेष न करे, बहिन बहिन से द्वेष न करे। उत्तम और सव्रत होते हुए तुम परस्पर कल्याणकारी वाणी से बोलो।

समानी प्रपा सह वोऽन्न भागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि

तुम्हारा पानी पीने का स्थान एक समान हो, तुम्हारा अन्न खाने का स्थान तथा भाग समान हो, तुम्हें एक ही धुरा अर्थात् कार्य में जोड़ता हूँ।

सं जानीध्वं सं प्रच्यध्वं सं वो मनान्सि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे, सं जानानामुपासते॥

उत्तम ज्ञान को प्राप्त करो, एक दूसरे के साथ मैत्री करो। ऋग्वेद में भी कहा है कि—

"मित्रं कृणुध्वं खलु" निश्चय करके तुम मित्र बनाओ "वः मनान्सि संजानताम्" तुम अपने मन को 'सुसस्कृत' अर्थात् उत्तम ज्ञान से शुद्ध करो 'यथा पूर्वे संजानानां देवा भागं उपासते' जिस प्रकार पूर्ण ज्ञान सम्पन्न अर्थात् सूर्य चन्द्रमा आदि देवता भजनीय परमेश्वर की उपासना करते हैं उसी प्रकार तुम भी करो अर्थात् सृष्टि के नियमानुसार वर्तो।

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम्॥

अथर्व वेद में भगवान् कहते हैं तुम्हारे गायत्र्यादि मंत्र अथवा विचार समान हों, तुम्हारी सभा में एकता अर्थात् विरोध का अभाव हो। तुम्हारा व्रत अर्थात् कार्य-आचार समान हों, तुम्हारा चित्त समान हो। मैं परमेश्वर तुम्हें समान भाग अर्थात् अन्न देता हूँ। सब एक समान चित्त होकर अपने कार्य में लगे रहो।

समानि व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

तुम्हारा अभिप्राय समान हो, तुम्हारा हृदय समान हो अर्थात् द्वेष रहित हो, तुम्हारे मनों में ऐसी एकता हो कि जिससे तुम्हारे सब कार्य एकत्रित मिल कर हो सकें। कणाद ऋषि कहते हैं "यतोऽभ्युदय निःश्रेयसः सिद्धिः स धर्मः"

जिससे मोक्ष और सुख प्राप्त हो उसका नाम धर्म है जैसा कि तैत्तिरियोपनिषद में लिखा है।

ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचने च।

शास्त्रविहित यथार्थ आचरण से पढ़ें और पढ़ावें।

सत्यञ्च स्वाध्याय प्रवचने च।

सत्याचरण से सत्य विद्याओं को पढ़ें और पढ़ावें।

तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च।

तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और पढ़ावें।

दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च।

मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटा कर पढ़ते पढ़ाते जायँ।

अग्नयश्च स्वाध्याय प्रवचने च।

अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें करावें।

अतिथयश्च स्वाध्याय प्रवचने च।

अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें।

मानुष च स्वाध्याय प्रवचने च।

मनुष्य सम्बन्धो व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए पढ़ें पढ़ावें।

प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च।

वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ें और पढ़ावें।

प्रजापतिश्च स्वाध्याय प्रवचने।

अपनी सन्तान और शिष्यों को पालन करते हुए पढ़ें पढ़ावें।

तैत्तिरियोपनिषद् शिक्षा वल्ली अ० ११ में आचार्य शिष्य के प्रति उपदेश करते हैं कि तू सदा सत्य बोलना, धर्माचरण करना, प्रमाद रहित होकर पढ़ और पढ़ा, प्रमाद से कभी सत्य को मत त्याग देना, प्रमाद से धर्म को मत त्याग, प्रमाद से आरोग्यता और चातुर्य को मत त्याग देना, प्रमाद से ऐश्वर्य की वृद्धि को मत त्यागना, प्रमाद से पढ़ने पढ़ाने को मत छोड़ देना। देव, विद्वान् और माता-पिता आदि की सेवा से प्रमाद मत करना, जैसे विद्वान् का सत्कार करै वैसे ही माता-पिता आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। उनसे भिन्न मिथ्या भाषण आदि मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्म युत कर्म हों उनका ग्रहण कर। जो हमारे पापाचरण हों उनको कभी मत कर। जो हमारे में कोई मध्यम, उत्तम, विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास कर। श्रद्धा से देना अश्रद्धा नहीं देना, शोभा से प्रसन्नतापूर्वक देना, लज्जा से देना, भय से देना तथा मैत्री आदि प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये जैसा कि मनुस्मृति में लिखा है।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञान मुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुः दानमेकं कलियुगे॥

सत्युग में अर्थात् सतोगुण की वृद्धि में तप ही मुख्य माना

है, त्रेता में ज्ञान की प्रधानता मानी है, द्वापर युग में यज्ञादि की प्रधानता होती है और कलियुग में केवल दान। मुण्डक उपनिषद् में लिखा है कि जो अक्षर रूप परमात्मा, सर्वज्ञ, सर्ववित्, सबका जानने वाला, जिसका सब सृष्टि का जानना ही तप है उसी परमेश्वर से यह सूर्य चन्द्रादि सब भुवन, नाना रूप वाला सब कार्य कारण जगत् उत्पन्न होता है। प्रश्नोपनिषद् के छठे प्रश्न में महर्षि पिप्पलाद कथन करते हैं कि उस परमात्मा ने प्राण को रचा, प्राण के अनन्तर श्रद्धा को। उसके पश्चात् आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पाँचों भूतों को दशों इन्द्रियाँ और एकदशवाँ मन को इसके पश्चात् अन्न को अन्न से बल को, फिर तप को मन्त्रों को, यज्ञादि कर्म करने वाले शरीर को और उन शरीरों में नाम और रूप को रचा। तैत्तिरियोपनिषद् में राथीतराचार्य के मत में सत्य भाषण ही तप है। यही बात पौरशिष्ट कहते हैं। मौद्गल्य ऋषि कहते हैं कि नित्य वेद का पढ़ना पढ़ाना ही तप है। सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि अन्वयभाव तथा व्यतिरेक भाव व्याप्ति द्वारा चिन्तन करने का नाम तप है। और वह तप 'मैं ब्रह्म हूँ' इस वाक्यार्थ बोध के पर्याप्त है। यहाँ कोई आचार्य तप शब्द से कहीं घोर परिश्रम को और कहीं कष्ट से दुःख की सहनशीलता द्वारा इन्द्रिय और मन के दोषों को तपा कर भस्म करना अर्थात् शुद्ध करना ग्रहण करते हैं।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।

सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥

एकाक्षर ओंकार से परे वेद नहीं, प्राणायाम से परे तप नहीं और गायत्री से बढ़कर मौन नहीं और सत्य से बढ़कर मौन नहीं। गायत्री और प्रणव के सहित विधिपूर्वक तीन प्राणायाम भी परं तप समझने चाहियें। गीता में कहा है—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौच मार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

देव, द्विज, गुरु और विद्वानों का पूजन, शुचता, सरलता, ब्रह्मचर्य और परपीड़ावर्जन यही शरीर सम्बन्धी तप कहा है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

जो वचन उद्वेग कारक न हो, सत्य, प्रिय और हित कर होवे, और वेद पाठ, व मन्त्रादि का अभ्यास यह वाणी के तप हैं।

ऊपर के सब प्रमाणों से तात्पर्य यह है कि सत्युग में प्रयत्न अप्रधान ज्ञान अधिक होता है, त्रेता में प्रयत्न प्रधान ज्ञान होता है जैसा कि मुण्डक उपनिषद् में लिखा है—

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो मान्य पश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ति तानि ॥

वह यह बात है कि संहिताओं में जिन अग्नि होत्रादि कर्मों

को वेद वेत्ता लोग देखते थे वह कर्म त्रेता में अनेक प्रकार से विस्तृत थे द्वापर में यज्ञ प्रधान रहता है और कलियुग में शक्ति सब मनुष्यों में न्यून रहती है अर्थात् मोक्ष कारक नहीं। कलि में केवल दान ही मोक्ष का हेतु है। प्रजापति ने मनुष्यों के कल्याण करने वाला दान ही है ऐसा छान्दोग्योपनिषद् में माना है। गाथा इस प्रकार है :—

असुर, देवता और मनुष्य यह तीनों प्रजापति की सन्तान हैं। एक बार यह तीनों मिलकर प्रजापति के समीप आये और बोले कि हे गुरो ! हमको ऐसा उपदेश करो कि जिससे हमारी तीनों को मोक्ष हो जावे। और एक ही उपदेश हो, एक ही शब्द हो और एक ही अक्षर हो ऐसा उपदेश हो। तब प्रजापति बोले कि लो श्रवण करो, मनन करो, निदिध्यासन करो और साक्षात्कार करके समझो। वह उपदेश 'द०,द०,द०' है। तब देवताओं से बोले कि आया तुम्हारे ज्ञान में। उन्होंने कहा कि हाँ महाराज ! समझ गये आपने कहा है कि 'दाम्यत' अपने आपको दमन करो। अपने स्वरूप से बाहर मत जाओ। अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियों को वश में कर भोगों से उपराम हो जाओ क्योंकि देवता व ऐश्वर्यवान् और विद्वानों में यही त्रुटि है। यदि इसे निर्गत कर देवें तो मोक्ष हो जावे। तब प्रजापति ने असुरों से पूछा कि तुमने क्या समझा ? उन्होंने कहा कि महाराज ! हमने यह समझा है कि 'दयध्वम्' दया करो, क्योंकि असुरों में दया की ही त्रुटि है। यदि यह दोष न होवे तो मोक्ष हो जावें।

पुनः मनुष्यों से पूछा तुमने क्या समझा ? मनुष्य बोले कि 'दत्तमिती' कि दान करो। यदि मनुष्यों में दान करने की शक्ति पूर्ण होवे तो निःसन्देह मोक्ष में कोई रुकावट न रहे। प्रजापति ने एक अक्षर दकार में तीनों को शिक्षा दी 'दाम्यत्, दत्तं दयध्व-मिति' कि दमन करो, दान करो, दया करो, यह मेघ ही प्रजा-पति है। जब वर्षा के बिना प्रजा अकुला उठती है तब परमेश्वर की महती कृपा से श्रुति माता की घोषणा देता हुआ मेघ गर्जना करता है कि 'ददद' ऐश्वर्यवान् राजाओं और विद्वानों को यह कहता है कि अपनी इन्द्रियों को वश में करो। असुर मांसा-हारियों को अर्थात् पर पीड़क पुरुषों को कहता है कि तुम दया करो और साधारण मनुष्यों के लिए कहता है कि ईश्वर निमित्त अपने शरीरादि सब पदार्थों को दान कर देने से तुम्हारी मोक्ष हो जावेगी। महाभारत में भीष्म जी कहते हैं—

त्यागः श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति सर्वश्रेष्ठं यच्छरीरं त्यजेत्।

मुनि त्याग को अर्थात् दान को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं परन्तु यह स्मरण रहे कि सम्पूर्ण दानों में यह दान सबसे श्रेष्ठ है कि ईश्वरार्पण अपने शरीर को भी दान करे।

कबीर जी भी कहते हैं—

शीश दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान।
बहुतक भौंदू बह गये राख जीय अभिमान॥

और भी कहा है—

प्राण दानात् परं दानं न भूतो न भविष्यति ।
नाह्यात्म प्रियं तरं किचिदस्ति सुनिश्चितम् ॥

प्राण दान से परे में और कोई उच्चतर दान नहीं है क्योंकि सबको निश्चय ही अपने प्राण ही सब से प्यारे हैं। इसलिये सबको अभय दान देना और उसमें जरूरत पड़ने पर अपने शरीर को भी त्याग देना यह परम मोक्ष का हेतु है।

न गो प्रदानं न मही प्रदानं न चान्न दानं हि तथा प्रधानम् ।
यथा वदन्तीह बुधा प्रधानं सर्व प्रदानेष्वभय प्रदानम् ॥

बुद्धिमान् पुरुष गो, मही व अन्न दान को श्रेष्ठ कहते हैं। किन्तु सर्व दानों में अभय दान देना अर्थात् सम्पूर्ण देश को हिंसा से शून्य करना अपार धन कहा है। इसीलिये साधु लोग अपने समान दूसरों को भी जान कर सबों पर दया ही करते हैं

नाहिंसा सदृशं दानं नाहिंसा सदृशं तपः ।
नाहिंसा सदृशं तीर्थं पुण्य भूषण शोभने ॥

अहिंसा के समान कोई दान नहीं, अहिंसा के समान कोई तप नहीं और अहिंसा के समान कोई तीर्थ नहीं है। उपासना के आनन्द को तंग दिल वाला कभी नहीं पा सकता। जिसका दिल बादशाह नहीं वह क्या जाने भक्ति रस को। जो स्थूल पदार्थों को हरि के नाम पर खोता है तो चित्तवृति का हरि के चरणों में खोया जाना शनैः शनैः हो जाता है। राजा बलि ने करुवा हाथ में लेकर तीनों लोक भगवान् को दान कर दिये।

तुमसे तो एक असुर के बराबर भी नहीं सरती। लोग कहते हैं भजन में एकाग्रता नहीं होती। एकाग्रता भला कैसे हो! कृपणता के कारण बन्दर की तरह मुट्ठी से पदार्थों को तो छोड़ते नहीं और मुट्ठी में लिया चाहते हो राम को। आखिर ऐसा अनजान और ऐसा भोला भाला तो राम है नहीं जो आप ही हत्थे चढ़ जाय। जब ताईं तुम अपना सब कुछ न दोगे तब तक कुछ न पाओगे। इसी प्रकार जानश्रुति पौत्रायण प्रसिद्ध राजा ने सयुम वा रैक्क को अन्वेषण कराया। तब उसने गाड़ी के नीचे भाग में बैठे पामा नामक दाद को खुजलाते हुए ऋषि को देखा और महाराज ने सहस्र गो, हीरा मोती और उनके लिए अश्वतरी रथ और अपनी कन्या सब दान किये। तब उन्होंने संवृग देवता की उपासना राजा को बतलाई कि निश्चय करके यह दो संवृग देवता हैं जो देवों में वायु नाम से और प्राणों में प्राण नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी तरह कपी गोत्र वाले शौनक और कक्षसैन का पुत्र अभिप्रतारी जब भोजन कर रहे थे तब एक ब्रह्मचारी ने भिक्षा माँगी तो उन्होंने कुछ न दिया। तब दोनों से वह ब्रह्मचारी बोला कि जो सम्पूर्ण विश्व का रक्षक एक आनन्द स्वरूप परमात्मा है वह उसको नष्ट कर देता है जो दान नहीं करते। तब उन्होंने भिक्षा दी। इसी प्रकार काशी के प्रसिद्ध महाराज ने ब्रह्मज्ञान के नाम मात्र से ही गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकि ब्राह्मण को सहस्र गोवें दान दीं, तो बालाकि ने आदित्य में, चन्द्रमा में, विद्युत, आकाश, वायु, अग्नि, आदर्श में शब्दादि

दिशाओं में, छाया में, आत्मा में अर्थात् बुद्धि में ब्रह्मोपासना कथन की। तब महाराज ने कहा कि यह ब्रह्म का पर्याप्त उपदेश नहीं। महाराज ने स्वपीति पुरुष के निकट ले जाकर सुषुप्ति अवस्था का कथन कर आत्मारूप ज्ञान का दान दिया—

स यथोर्ण नाभि स्तन्तुनोच्चरेद्यथाऽग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिङ्गा व्युचरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषद् सत्यस्य सत्यमिति प्राणाः वै सत्यम् ॥

जैसे मकड़ी अपने तार से ऊपर आती है वा अग्नि से छोटे २ चिन्गारे निकल कर चहुं ओर फैलते हैं इसी प्रकार आत्मा से प्राण, लोक, देव व सब भूत उत्पन्न होते हैं। यही उसके बोधनार्थ उपनिषद् है। सत्य का सत्य और प्राण का भी सत्य है।

यथा काष्ठस्थितो वह्निस्तथा देहे वसाम्यहम्।
तस्माद्धिसन्ति ये जन्तून घातकाः मे न संशयः ॥

जैसे काष्ठ में सामान्य रूप से अग्नि रहती है वैसे ही मैं सब प्राणियों में वास करता हूं। इस कारण जो मनुष्य जीवों की हिंसा करते हैं वे मेरा ही घात करते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

ये च हिंसन्ति वै जन्तून् जलजान् स्थलजांस्तथा।
मज्जन्ति नरके घोरे कल्पकोटि शतैरपि ॥

जो कोई जल अथवा स्थल के जीवों को मार कर मांस खाते हैं वे सब कोटिशत वर्ष पर्यन्त नरक में वास करते हैं। परमेश्वर वेद में कहते हैं :—

ये मांस मदन्ति पौरुषेयं च ये क्रवि गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि। अथर्व का० ८-३-६

जो मांस कच्चा, पक्का या अण्डों को खाते हैं उनका मैं नाश कर देता हूं कि हमेशा दुःख ही दुःख पावें और भी परमेश्वर यजुर्वेद में कहते हैं 'गां मा हिंसी' अरे मनुष्य गाय को तो मत मार तब भी तेरा भला हो जायगा श्री रामचन्द्र जी विश्वामित्र जी से कहते हैं—

गो ब्राह्मण हितार्थाय देशस्य च हिताय च
तव चैवाऽप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥

गो ब्रह्मण और देश के हित के लिए तुम्हारे अप्रमेय वचन को करने को उद्यत हूं। सीता से कहते हैं—

आरण्यकां क्षत्रियाद्धारितो चापो नार्त्त शब्दं भवेदिति।

क्षत्रिय इसलिये धनुष धारण करते हैं कि दुनिया में दुःख का शब्द कान तक सुनाई न दे। इसलिये परमेश्वर से प्रार्थना है कि:—

यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु।
प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः देवेषु ॥

हे प्रभो ! जहां जहां उत्पत्ति स्थिति और पालन के लिये चेष्टा करते हैं वहां वहां हमको अभय प्रदान करें। हम को तो सम्पूर्ण प्रजा से अभय होवे और हम से सम्पूर्ण प्रजा का कल्याण हो। सम्पूर्ण पशुवों से हम को अभय होवे और हम से सम्पूर्ण जीवों को अभय होवे। जो यह अभय दान देता है और अभय दान की प्रार्थना करता है वह सब जीवों से अभय हो जाता है जो अभय दाता है वह ब्रह्म ही होता है।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा पृथिवी उमे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नोऽस्तु ॥
अभयं मित्रादभय मभित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्त मभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।
अथर्वका० १९ सूत्र १५ य०५

आकाश हमको अभय करे, सूर्य और पृथिवी, आकाश और अन्धकार दोनों हमको अभय करें। हमको ऊपर नीचे दायें बायें आगे पीछे सब ओर से अभय होवे। हमको अज्ञात से अर्थात् परोक्ष से और प्रत्यक्ष अर्थात् ज्ञान से अभय होवे। हम को दिन रात से अभय होवे, सब दिशायें मेरी मित्र बन जावें। परमेश्वर कहते हैं हे जीवो ! मेरे सकल पदार्थ तुमको अभय-कारी हों और तुम सब को अभय दान दो, दान ही सब से श्रेष्ठ माना है। देखो दधीची ऋषि ने परोपकार के लिये अपनी अस्थी भी दे दीं। राजा दशरथ ने अपने सर्वस्व को दे दिया

परन्तु सत्य धर्म नहीं छोड़ा। शैव राजा ने अपने शरीर का मांस दान किया परन्तु एक पक्षी को न मरने दिया जो उसकी शरण में आया हुवा था। हरिश्चन्द्र ने धर्म पर कितने अधिक कष्ट सहते हुवे भी दातृत्व शक्ति को हाथ से न जाने दिया। किसी ने सत्य कहा है :—

दानेन तुल्यो निधिरस्ति नान्यो,
लोभाच्च नान्योऽस्ति रिपुः पृथिव्याम्।
विभूषणं शील समं च नान्यत्,
सन्तोष तुल्यं धनमस्ति नान्यत्॥

दान के तुल्य और कोई कोष नहीं है जिससे कि अपार सुख निकले, लोभ के समान कोई अपना रिपु संसार में नहीं, शील अर्थात् नेक नियत से बड़ा कोई आभूषण नहीं और सन्तोष के समान कोई धन नहीं है। उपासना की जान समर्पण और आत्म दान है। यदि यह नहीं तो उपासना निष्फल और प्राण रहित है। भाई सच पूछो तो हर कोई लेने का यार है। जब तक तुम अपनी खुदी और अहंकार को परमेश्वर के हवाले न करोगे तुम्हारे पास बैठना तो कैसा वह तुम्हारे से कोसों दूर भागता फिरेगा। कृष्ण भगवान् ने उज्वलित हृदय सूरदास जी ने बच्चे की तरह क्या जोर से सच कहा है :—

किन तेरो गोविन्द नाम धरचो॥
लेन देन के तुम हितकारी, मोते कछु न सरचो।

विप्र सुदामा कियो अजाची, तण्डुल भेट धरचो।
द्रपद सुता की तुम पत राखी, अम्बर दान करचो।
गज के फंद छुड़ाये आकर, पुष्प जो हाथ पड़चो;
सूर की बिरियां निठुर हो बैठे, कानन मून्द धरयो।

इसी प्रकार तुलसी दास जी कहते हैं

यह विनती रघुवीर गुसाईं ॥
और न आस विश्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई।
चहूं न सुगति सुमति सम्पति ऋद्धि सिद्धि बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम पद अनुदिन अधिकाई॥

इस प्रकार त्याग अवस्था में ब्रह्मानन्द में लीन पुरुष के पास ऐश्वर्य सौभाग्य इस तरह दौड़े आते हैं जैसे भूखे बालक मां के पास। जब हमारे भीतर दान का गुण अथवा शान्ति रूपी विष्णु है तो लक्ष्मी हमारे दरवाजे के पास अपने आप खड़ी रहेगी। गोपी कहती हैं 'आई पवन ठुमक ठुमक लाई बुलावा श्याम का' हनुमान जी कहते 'इन हीरों का मैं क्या करूं और इस इनाम को मैं कहां धरूं जिसमें राम नहीं' मूर रहित कुन्द कुञ्ज को मैं क्या करूं अर्थात् क्या देखूं जब मुकुन्द नहीं तो कुञ्ज किस काम की। प्रायः जो कोई त्यागी शिव की उपासना करते हैं वे धनवान् हो जाते हैं और लक्ष्मी पति विष्णु के उपासक प्रायः कंगाल हो जाते है। याद रक्खो ऐंठो तो सही परन्तु

उर्द के आटे की तरह मुक्के मत खाओ। युद्ध करने से शूरमा हो जावे तो पशु बहुत युद्ध करते हैं। सच्चा पण्डित और शूरमा वही है जो अपने धन को दूसरे को देने में समर्थ है।

साधारण धर्म

दिवसे नैव तत्कुर्यात्येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्ट मासेन तत्कुर्यात्येन वर्षा सुखं वसेत्॥

दिन भर में वह कार्य करना चाहिये जिससे रात्रि में सुख पूर्वक शयन करे। आठ महीने में वह काम करे जिससे वर्षा में सुख पूर्वक बसे। पूर्वायु में वह कर्म करे कि जिससे वृद्धावस्था में सुख हो। समग्र आयु में वह काम करना चाहिये कि जिससे दूसरे जन्म में सुख होवे। और वह है सत्य का व्रत धारण करना जिससे पुनर्जन्म और मरण का अन्त होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है। भागवत में कहा है :—

सत्य व्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्य।
सत्यस्य सत्यं ऋत्सत्य नेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरशं प्रपद्ये॥

सत्य संकल्प, सत्य से प्राप्त होने योग्य तीनों कालों में सत्य, सत्य के आदि कारण सत्य में स्थित सत्य, सत्य के भी सत्य, सम दृष्टि तथा शुभ वाणि के प्रवर्तक सत्य स्वरूप आप की शरण को मैं प्राप्त होता हूं। वेद में कहा है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्।
तन्मे राध्यतां यद ह मनृतात्सत्य मुपैमि॥

हे अग्ने ! ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! व्रत के स्वामी अर्थात् व्रत पालक में व्रत धारण करता हूँ । मैं इसको पूर्ण कर सकूं ऐसी कृपा मुझपर करो । इसलिये मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ । क्योंकि आपकी कृपा के बिना मेरे व्रत की स्थिति नहीं । 'असतो मा सद्गमय' असत्य से मुझे सत्य को ले चल । 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अज्ञानान्धकार से स्वयं प्रकाश को प्राप्त कर 'मृत्युर्माममृतं गमयेति' मौत से मुझे अमर की ओर ले चल । किसी की निन्दा न करे यह व्रत है, अतिथियों के लिए बहुत अन्न सञ्चय करे यह व्रत है । मनु में लिखा है कि—

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।

जब तक अतिथि को भोजन न करा ले तब तक आप भोजन न करे । अतिथियों को कराया हुवा भोजन यश, आयु तथा स्वर्ग का दाता है । इसलिये अतिथियों की सेवा के लिये धान्यादि सञ्चय करे यही व्रत है । बड़े मन वाला उदार चित्त हो यह ही व्रत है । वन पर्व में यक्षराज युधिष्ठिर से पूछते हैं कि हे राजन् ! श्रेष्ठ कुल में जन्म और श्रेष्ठ स्वधर्माचरण तथा स्वाध्याय अर्थात् वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना अथवा सुनना, इन सब कर्मों में से किससे ब्राह्मणत्व होता है सो कहो । महाराज युधिष्ठिर जी कहते हैं—

श्रुणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वस्य व्रतमेव न संशयः ॥

हे यक्ष ! सुनिये, श्रेष्ठ कुल में जन्म, स्वाध्याय, वेदादि

शास्त्र का पढ़ना पढ़ाना और सुनना यह कोई द्विजत्व के कारण नहीं। द्विज होने में व्रत ही कारण है, इसमें संशय नहीं। पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और शास्त्रों की चिन्ता करने वाले श्रेष्ठ धर्माचरण रहित होवें तो वे मूर्ख हैं। जो क्रियावान है वही पण्डित है।

चतुर्वेदोपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते।

चारों वेदों का भी पढ़ा हुआ हो परन्तु दुष्टाचरण पापादि कर्म करता हो तो वह शूद्र से भी अति नीच है। किन्तु जो अग्नि होत्रादि श्रेष्ठ कर्म करता है और इन्द्रिय जीत है तो ब्राह्मण है। शास्त्रों में वर्णों के यह भी व्रत प्रतिपादन किये हैं।

अध्यापनं अध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना व लेना यह छः कर्म ब्राह्मण के हैं। परन्तु लेना यह निंद्य कर्म माना है। मन को बुरे कर्मों में न जाने देना, इन्द्रियों को वश में रखना, कर्मानुष्ठानी होना, शौच अर्थात् जल से बाहर के अंग, सत्याचरण से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा, और ज्ञान से बुद्धि आदि को पवित्र करना, क्षान्ति-निद्रा, स्तुति, सुख, दुःख, क्षुधा, तृष्णा, हानि, लाभ, मानापमानादि हर्ष शोक छोड़ के धर्म में दृढ़ निश्चय रहना, आर्जव-कोमलता, निरभिमान, सरलता आदि भाव रखना और कुटिलतादि दोष छोड़ देना,

ज्ञान-यथार्थ जानना पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथा योग्य उपयोग लेना, कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व-जन्म, धर्म, विद्या, सत्संग, माता-पिता तथा आचार्य व तीर्थों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना यह १५ गुण और कर्म ब्राह्मणों में अवश्य होने चाहियें।

प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययन मेव च।
विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ (मनुः)

न्याय से प्रजा की रक्षा करना, पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार, सब प्रकार से सब का पालन करना, दान विद्या व धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना, इज्या अग्निहोत्रादि यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, विषयों में न फँस कर जितेन्द्रिय रह कर सदा शरीर और आत्मा से बलवान रहना और बलात्कार से तीनों वर्णों को या मनुष्य मात्र को पाप में न फँसने देना, सैंकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेले को भय न होना, सदा तेजस्वी दीनता रहित दृढ़ रहना, धैर्यवान् होना, राजा और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना, युद्ध में भी दृढ़ निःशंक रह के उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती

है तो ऐसा ही करना, दान शीलता रखना, ईश्वरभाव पक्षपात रहित होकर सब के साथ यथायोग्य वर्तना, विचार के देना यह क्षत्रिय के कर्म और गुण हैं। महाभारत में कहा है—

ब्राह्मणानां यथा धर्मो दानमध्ययनं तपः।
क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देह पातनम् ॥

तात्पर्य यह है कि क्षत्रिय का धर्म युद्ध में मरना और अपने लिए और संसार के लिए मुक्ति का और स्वर्ग का द्वार खोल देना है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य मण्डल भेदिनौ।
परिव्राट् योग युक्तोयः रणे चाप्यभि मुखे हतः ॥

दो ही पुरुष सूर्य मण्डल को भेदन करके मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं या तो परिव्राट्-योग युक्त संन्यासी या धर्मानुकूल युद्ध में मरने वाला क्षत्रिय।

पशूनां रक्षणं दानं इज्याध्ययन मेव च।
वणिक्पथं कुसीदं वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

गौ आदि पशुओं का पालन और वर्द्धन करना, दान विद्या धर्म की वृद्धि, गौ आदिकों के लिए गोशाला आदि बनाने के लिये धन व्यय करना, अग्नि होत्रादि यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रों को पढ़ना, सब प्रकार से व्यापार करना, कुसीद एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह, वा बीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो

सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना न देना और खेती करना ये वैश्य के गुण कर्म हैं ।

एवमेव तु शूद्रस्य प्रभो कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां सुश्रुषामनसूयया ॥

शूद्र के योग्य है निन्दा, ईर्षा, अभिमान आदि दोषों को छोड़ के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन निर्वाह करना यह ही शूद्र के गुण कर्म हैं । इन चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म को व्रत कहते हैं । आपस्तम्ब धर्म सूत्रों में लिखा है :—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते, जाति परिवृत्तौ । अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यंवर्णं मापद्यते, जाति परिवृत्तौ ॥

अर्थात् धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे २ वाले वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण का गिना जावे । मनु कहते हैं—

शूद्रो ब्राह्मणता मेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥

शूद्र कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और

वैश्य हो जाय। अर्थात् शूद्र ब्राह्मणता को कर्मानुसार बदल जाते हैं क्योंकि—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्ये नेज्यया सुतैः।
महा यज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

पढ़ने से, मन्त्रों के जप करने से अर्थात् सत्यासत्य के विचार से, गुरु के शब्द के रटने से, यज्ञादि के करने से विधि पूर्वक सन्तानोत्पत्ति तथा ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, वैश्यदेव यज्ञ तथा अग्निष्टोमादियज्ञ, विद्वानों का संग सत्कार, सत्य भाषण, परोपकारी सत्कर्म और सम्पूर्ण शिल्प विद्यादि पढ़ने से दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्तने से यह शरीर ब्राह्मण का किया जा सकता है।

योऽनधीत्य द्विजो वेद मन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयम्॥

जो वेद को न पढ़ कर अन्यत्र प्रतिष्ठा आदि के लिए श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। इसलिए—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्य मुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकांक्षे दपमानस्य सर्वदा॥

ब्राह्मण को चाहिये कि अपनी प्रतिष्ठा से विष के तुल्य डरे और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करे। ऐसा ब्राह्मण वेद और परमेश्वर को जानता है। जो स्वर्णादि रत्नों

के लोभ में और काम में नहीं फंसता उसी को धर्म का ज्ञान होता है और धर्म के प्यासों को वेद ही परम प्रमाण होता है गुरु परमेश्वर का ज्ञान देते हुये अपने शिष्यों को कहते हैं—

यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्त विचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणा सम दर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामास्युः यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथा। एषआदेश, एष उपदेश, एषा वेदोपनिषत्, एतदनुशासनं, एव मुपासितव्यम् ॥

जब तुमको किसी प्रकार का कर्म विषयक तथा वृत्त विषयक सन्देह हो तब जो ब्राह्मण समदर्शी, योगी, विचार शील, पक्षपात रहित, आर्द्र चित्त, धर्म की कामना करने वाले धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्म मार्ग में वर्तें वैसे तुम भी वर्तावि करो। यही आदेश है, यही गुरु का उपदेश है और यही उपनिषद् की शिक्षा है। इस प्रकार जब धर्म से अन्तः करण शुद्ध हो जाता है तो कणाद ऋषि यों कहते हैं—

धर्म प्रसूतात् द्रव्य गुणकर्म सामान्य विशेष समवायानां पदार्थानां साधर्म्य वैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्निः श्रेयसम् ॥

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर साधर्म्य अर्थात् 'मैं हूँ' का ज्ञान और वैधर्म्य 'यह मैं

नहीं हूँ' इस ज्ञान को नष्ट कर द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्व ज्ञान अर्थात् इन को अपना स्वरूप जान मोक्ष को प्राप्त होता है।

पृथिव्यापस्तेजोवायु आकाशः कालो,
दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

पृथिवो, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, और मन ये नव द्रव्य हैं।

क्रिया गुणवत् समवाय कारणं इति द्रव्य लक्षणम्।

जिसमें क्रिया और गुण रहें अथवा जो गुणों के रूपों को धारण करें अर्थात् पृथिव्यादि का कारण हो उसको द्रव्य कहते हैं।

लक्ष्यते येनेति तल्लक्षणम्।

जिससे लक्ष्य जाना जाय उसको लक्षण कहते हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्वा परत्व-बुधि, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व द्रव्यत्व स्नेह संस्कार धर्म अधर्म और शब्द यह चौबीस गुण हैं।

द्रव्याश्रय गुणवान् संयोग विभागेष्व कारणम नपेक्षः।

गुण का लक्षण यह है कि जो द्रव्य के आश्रय रहे, अन्य गुण को धारण न करे, संयोग और विभाग में कारण न हो और एक दूसरे की अपेक्षा न करे।

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुंचनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि।

ऊपर को चेष्टा करना, नीचे को चेष्टा करना संकोच करना, फैलाना, घूमना, आना जाना पर्यटन आदि इन को कर्म कहते हैं। द्रव्य के आश्रित गुणों से रहित संयोग और विभाग होने में अपेक्षा रहित कारण हो उसको कर्म कहते हैं। सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। द्रव्य में द्रव्यपना, गुण में गुणपना, कर्म में कर्मपना, यह सब सामान्य और विशेष कहाते हैं। वास्तव में द्रव्य एक परमात्मा ही है। और चैतन्यात्मा और विस्तार यह दोनों उसके गुण हैं। विस्तार जिन आकारों को धारण करता है उनको प्राकृत जगत् और चैतन्य जिन आकारों को धारण करता है उनको जीव कहते हैं। यह भी किसी किसी का मत है।

युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्

एक साथ में जो दो अनुभवों को ग्रहण न कर सके अर्थात् देखना और सुनना एक साथ में न करना, अथवा भेद ज्ञान देना मन का चिह्न है। जब सुषुप्ति काल में मन अपने कारण अविद्या में लय होता है तब 'मैं हूँ' ज्ञान के अतिरिक्त ज्ञेय पदार्थ कुछ नहीं रहता। पुनः मन द्वैताद्वैत अहं अनहं का रूप धारण कर लेता है।

ज्ञेयं सर्वं प्रतीतं च ज्ञानं च मन उच्यते।

जो कुछ ज्ञेय और ज्ञान है यह सब मन ही कहलाता है।

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिंगम् ।

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान यह जीवात्मा के अस्तित्व के प्रमाण लिंग हैं। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मा के स्वप्न में प्रतीत हुवा है। और ब्रह्मा विष्णु के और विष्णु ईश्वर के अर्थात् महेश्वर के संकल्प से प्रादुर्भूत हुवा है। और उस ईश्वर का वाचक ओंकार है। योग शास्त्र में लिखा है—

तस्य वाचकः प्रणवः तज्जपस्तदर्थभावनम् ।

उस ईश्वर का वाचक प्रणव है, कल्याणार्थ उसी को जप, उसी के अर्थ को सर्वत्र भावना कर।

ततः प्रत्यक चेतनाधिगमो अन्तरायाभावश्च ।

उससे अर्थात् प्रणव के जप से चैतन्य रूप जो परमेश्वर है उसका अधिगम अर्थात् प्रकाश अन्तःकरण और सम्पूर्ण पदार्थों में वही प्रतीत होने लगता है औ सम्पूर्ण विघ्न नाश को प्राप्त हो जाते हैं। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है 'परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः' यह जो ओंकार है यही निर्गुण ब्रह्म है और यही सगुण अर्थात् माया विशिष्ट और तत्कार्यानुभूत भी ओंकार ही है। यह जो अनन्त अपार सुख स्वरूप अनन्त ज्ञान और सत्य स्वरूप ब्रह्म है वह भी ओंकार ही है। याज्ञवल्क्य कहते हैं :—

अदृष्टः विग्रहो देवो भाव ग्राह्यो मनोमयः ।
तस्योंकार स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति ॥

अदृश्य और दृश्यभाव ग्राह्य और मनोमय है वह ओंकार

हो है। इस ओंकार के स्मरण मात्र से वह आनन्द पूर्वक अपने दर्शन देता है। जिस प्रकार सम्पूर्ण पत्र अपनी सूक्ष्म २ पर्ण नालों से सम्बन्ध रखते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण वाणी ओंकार से परिपूर्ण हैं। इसलिये यह सब कुछ ओंकार ही है। वेद में परमेश्वर आज्ञा देते हैं 'हे क्रतो ओं स्मर' हे संकल्पमय जीव तू ओं स्मर। गो पथ में लिखा है—

'तस्मात् ओंकार ऋचिर्भवति यजूंषि यजुः साम्नि साम, सूत्रेषु, सूत्रं श्लोके श्लोकः प्रणवे प्रणवेति'

इस कारण से ओंकार ऋग्वेद में ऋग्, यजुर्वेद में यजु, सामवेद में साम, सूत्रों में सूत्र श्लोकों में श्लोक सब कुछ ओंकार ही हो गया है और प्रणव ओंकार में ओंकार रूप ही बन गया है। जिस प्रकार से तन्तु नाना प्रकार के पटों में परिणत होकर उसी के नाम रूप कहलाते हैं इसी प्रकार सम्पूर्ण ओंकार ही ओंकार है।

ओमित्ये तदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।
भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोकार एव॥

यह सब कुछ अविनाशी ओं ही अक्षर है। जो कुछ प्रतीत होता है वह सम्पूर्ण ओंकार हो है। तीनों कालों से प्रतीत अर्थात् भूत, भविष्यत् वर्तमान रहित है वह भी ओंकार ही है।

ओंकारं प्रणवं चैव सर्वं व्यापिन मेव च।

अनन्तं च तथा तारं शुक्लं वैद्युत मेव च।
तूर्य हंस परं ब्रह्म इति नामानि जानते॥

ओंकार, प्रणव, सर्व व्यापि, अनन्त, तारक, तूर्य, हंस, परब्रह्म, उद्गीथ, सच्चिदानन्द और राम यह सब ओंकार ही के नाम हैं। वेद कहता है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः॥

उसकी कोई प्रतिमा नहीं है परन्तु उसका नाम बड़े यश वाला है जैसा कि तुलसीदास जी कहते हैं—

कहूँ कहां तक नाम बड़ाई। राम न सके नाम गुण गाई॥

इसलिये भक्ति पूर्वक उसको जपना चाहिये क्योंकि नाम को महिमा अपार है और जो भक्ति और बिना नाम के जीवित हैं उनको शेष जी अपने ऊपर भार रूप कथन करते हैं।

न भूम्याः पर्वत भारो मे न मे भारो बनस्पतेः।
विष्णु भक्ति विहीनस्य तस्य भारो सदा मम॥

मुझे न भूमि का भार है और न पर्वत, बन बनस्पतियों का। परन्तु जो विष्णु भक्ति से विहीन हैं वह मुझ को सदा भार रूप हैं। पाण्डव गीता में कहा है—

गो कोटि दानं ग्रहणेषु काशी प्रयाग गंगायुत कल्पवासः।
यज्ञायुतं मेरु सुवर्ण दानं गोविन्द नाम्ना न कदापि तुल्यम्॥

गो जो इन्द्रिय उन से वन्दना योग्य जो ओंकार है उस

के जपने का जो फल हो सकता है वह ग्रहण में क्रोड़ गौ काशी में दान देने से तथा सहस्रों कल्प प्रयाग आदि तीर्थों में निवास करके और हजारों यज्ञ और सुमेरु समान स्वर्ण का दान करने से वह फल नहीं मिलता।

वृहदारण्यकोपनिषद् में महाराजा अजातशत्रु कहते हैं कि वही सत्य का सत्य है। निश्चय करके प्राण सत्य हैं परन्तु वह प्राणों का भी प्राण सत्य ब्रह्म है। ब्रह्म ब्राह्मण जाति अथवा ब्राह्मणत्व उसे परे हटा देता है अर्थात् ब्रह्मानन्द से पतन कर देता है जो आत्मा से पृथक् ब्राह्मण को मानता है। इसी प्रकार क्षत्रत्व उसे परे हटा देता है जो आत्मा से भिन्न क्षत्रत्व को समझता है। अर्थात् जो मनुष्य ब्रह्म और क्षत्रत्व को आत्मा से भिन्न मानता है यह दोनों इसको ब्रह्मानन्द से वंचित रखते हैं। इसी प्रकार जो लोकों के देवों को, भूतों को आत्मा से पृथक् जानता है उसको लोक, देव तथा भूत नीचे गिरा देते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य मैत्रेयि से कहते हैं कि निश्चय करके ब्रह्म, क्षत्र लोक देव तथा भूत यह सब आत्मा ही हैं। इन्हीं महाभूतों से उत्पन्न तथा इन्हीं में लय हो जाता है, प्रेत संज्ञा नहीं होती ऐसा मैं कहता हूँ। तो मैत्रेयि बोली कि क्या आत्मा का नाश हो जाता है? तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि यह मोह से रहित अविनाशी है।

विद्युत को ही ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म कथन करते हैं। यह प्रसिद्ध है कि जिस प्रकार बिजली चमकती हुई अन्धकार को

नष्ट-भ्रष्ट कर देती है इसी प्रकार से उपासक के पाप रूप अन्धकार का नाश होने से परमात्मा का नाम भी प्रकाशक होने से विद्युत है। जो ज्वरादि रोगों से सन्तप्त होकर अनेक प्रकार का दुःख का भोगना ही परम तप है। अर्थात् मनुष्य को उचित है कि जब इसको किसी प्रकार की पीड़ा प्राप्त हो तो बड़ी धीरता से उसका सहन करे ऐसा तितिक्षु पुरुष परम तप जानता है। मृत पुरुष को अरण्य में ले जाना या अग्नि आदि से जलाना यह परम तप है। वृहदारण्यक के पंचम ब्राह्मण में लिखा है कि जिस समय मनुष्य मरने लगे उस समय अपने पुत्र अथवा शिष्य को यह उपदेश करे कि तू ही ब्रह्म, यज्ञ तथा लोक है। तब पुत्र कहे कि हे पिता! हाँ मैं ही ब्रह्म हूँ। अर्थात् मैं ब्रह्म (वेद) को पढ़ूँगा, मैं यज्ञ हूँ अर्थात् यज्ञ करूँगा, मैं लोक हूँ अर्थात् मैं उत्तम लोकों को प्राप्त करूँगा। और जब पुत्र उत्पन्न होवे तब उसका यह नाम धरे 'वेदोऽसीति तस्य तत् गुह्य नामो भवति' पुत्र के कान में सुना कर कहे कि तू अनुभव अर्थात् ज्ञान स्वरूप है 'अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोक' यह आत्मा सब भूतों का लोक है 'अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयो प्राणमय' यह आत्मा वाणीमय मनोमय और प्राणमय है 'यः कश्च शब्दो वागेव' जो कुछ शब्द है वह वाणी है।

कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृति र्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव।

जितनी कामना हैं, संकल्प हैं, संशय हैं, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, बुद्धि भय है, यह सब मन का ही स्वरूप है।

अनपरं मनन्तरमवाह्यमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशाशनम्।

वही परमैश्वर्यवान् परमात्मा अपनी सत्ता से प्रतिरूप उस उस रूप वाला हुवा अर्थात् परमात्मा अपनी माया के द्वारा अनेक रूपों में परिणत होता हुवा प्रतीत होने लगा। परन्तु वह अपूर्व उसका कोई कारण नहीं 'अन पर' न उसका कोई कार्य है 'अनन्तर' वह अन्तर से रहित है 'अवाह्य' बाहर देश से रहित है वही सर्वान्तर होने से सब का आत्मा और सर्वानुभवी होने से ब्रह्म है यही वेद का उपदेश है:—

पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः पुरः स पक्षी भूत्वा पुरुष अविशदिति।

वह परमात्मा द्विपाद तथा चतुष्पाद आदि अनन्त जीवों को उत्पन्न करके और जीव रूप होकर मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुवा। वृहदारण्यक उपनिषद् में चक्र ऋषि के पुत्र उषस्त ने प्रश्न किया है कि हे याज्ञवल्क्य—

यद् साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म यः आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्य इति।

जो साक्षात् परोक्ष ब्रह्म सब का अन्तरात्मा है उसका मेरे प्रति स्पष्टतया वर्णन कर तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया 'एष ते

आत्मा सर्वान्तरः' यह तेरा आत्मा सर्वान्तर अर्थात् सब का अन्तरात्मा है 'कतमो याज्ञवल्क्य सर्वा सर्वान्तिरो' हे याज्ञवल्क्य वह कौनसा है। तब याज्ञवल्क्य बोले।

यः प्राणेन प्राणिति स ते आत्मासर्वान्तरो, यो अपानेन अपानीति स ते आत्मा सर्वान्तरो, यो व्यानेन व्यानीति स ते आत्मा सर्वान्तरो य उदानेनोदानिति स ते आत्म सर्वान्तर एषत आत्मा सर्वान्तरः ॥

जो प्राण से प्राण, अपान से अपान, व्यान से व्यान, उदान से उदान रूप चेष्टा करता है वह तेरा आत्मा सर्वान्तरात्मा है।

अथ यः एष सम्प्रदायोऽस्माच्छरीरादुत्थाय परं ज्योति रूप संपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एषात्मेति होवाच।

और यह जीवात्मा जो इस शरीर को त्याग परम ज्योति परमात्मा को प्राप्त होकर अपने निज स्वरूप में वर्तमान हुवा हुवा उसमें विचरता है। आचार्य बोले कि हे शिष्य! यही आत्मा परमात्मा है 'एतद्मृतमभय मेतद्ब्रह्मेति' यही अमृत अभय यही ब्रह्म है।

तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति।

निश्चय करके इस ब्रह्म का नाम सत्य है 'ते देवा सत्य मुपासते' वह देवता हैं जो सत्य की उपासना करते हैं। 'सत्य-

मवति हन्त्यसत्' सत्य रक्षा करता है असत्य नष्ट कर देता है। 'अथ यः आत्मा स सेतुः' और जो यह आत्मा परमात्मा है वह सेतु है क्योंकि 'एषां लोकानां विभर्ति' वह इन लोकों को धारण पोषण करता है और 'असम्भेदाम' नियम में रखता है।

नैतं सेतु महोत्र रात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतम्।

इस सेतु को दिन रात्रि नहीं तर सकते, न जरावस्था, न मृत्यु, न शोक, न धर्म, न अधर्म इस सेतु को प्राप्त कर सकते हैं जैसा कि—

यस्मिन् द्यौ पृथिवी चान्तरिक्ष प्रोतं मनः सह प्राणैश्वसर्वैः।

जिस अविनाशी ब्रह्म में द्यौ लोक पृथिवी लोक अन्तरिक्ष लोक और सब इन्द्रियों के साथ मन ओत-प्रोत है।

तमेवैकं जानथ आत्मान मन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः।

उस आत्मा को जानो उससे भिन्न अन्य वाणियों को छोड़ दो। क्योंकि वही अमृत के सेतु हैं। मुण्डक।

तमेव विदित्वाति मृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यते य नाय।

उसी को जानकर पुरुष मृत्यु का अतिक्रमण करता है।

सर्वे पाप्मानोतोनिवर्तन्ते अपहत पाप्मा ह्येष ब्रह्म लोकः।

इस से सब पाप निवृत्त हो जाते हैं क्योंकि यह ब्रह्म लोक पाप से रहित है।

तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वा अन्धः सन्ननन्धो भवति।

इसी से निश्चय करके सेतु से पार उतर कर अन्ध नेत्र वाला होता है 'विन्दः सन्नविन्दो भवति' दुःखी पुरुष सुखी होता अर्थात् ज़खमी ज़खमी नहीं रहता। 'उपतापी सन्ननुप तापी भवति' रोगी अरोगी हो जाता है।

तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वापि नक्त महरे वाभिनिष्पद्यते।

निश्चय करके उससे इस सेतु को प्राप्त करके रात्रि भी दिन हो जाती है।

तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।

इन्हीं को ही यह ब्रह्म लोक प्राप्त होता है और उन्हीं का सब लोकों में स्वच्छन्द गमन होता है।

अथ यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य मेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते।

अब यह कथन करते हैं कि जिसको यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही जो ज्ञाता होता है वह ब्रह्म को प्राप्त होता।

अथ पविष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य मेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्टवाआत्मानमनुविन्दते।

और जिसको इष्ट कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से यजन करके ब्रह्म को प्राप्त होता है।

यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य मेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मान मनु विद्य मनुते।

जिसको मौन कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से परमात्मा को भले प्रकार जान, मनन कर सकता है। ब्रह्म लोक में 'अर' और 'न्य' दो समुद्र हैं यहां से तीसरे द्यौ लोक में वह ऐरंमदीपंसर है वहां से अमृत चुवता हुवा एक अश्वस्थ वृक्ष है जो प्रभु निर्मित ज्योतिर्मय ब्रह्मपुरी है। उसको ब्रह्मचर्य के बिना कोई नहीं पा सकता। और ब्रह्मलोक में ब्रह्मचर्य द्वारा ही प्राप्त होते हैं। वह ब्रह्मलोक दूर तक फैला हुवा है और महान् मार्ग समीप दोनों ग्रामों को जाता है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें इस पृथिवी लोक और उपर के द्यौ लोक को जाती हैं वे किरणें आदित्य से निकल कर चारों ओर विस्तीर्ण हो इन नाड़ियों में प्रविष्ट होती हैं। वे किरणें इन नाड़ियों से निकल कर बाहर शरीर में फैलती हैं और फिर उसी आदित्य में प्रविष्ट हो जाती हैं। जो हृदय की नाड़ियें भूरे वर्ण वाली अति सूक्ष्म श्वेत नीली पीली रक्त वर्ण की स्थिर हैं वह यह सूर्य का रूप है क्योंकि—

आदित्य पिङ्गलेष, शुक्लेष, नीलएष पीतएष तद्यत्रैतत् सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानन्ति।

वह जिस काल में इस सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होकर सम्पूर्ण अन्तःकरण की वृत्तियों को अपने में संहार कर लेता है तब प्रसन्न चित्त हुवा स्वप्न नहीं देखता 'तदा नाडीषु सृप्तो भवति' उस काल में नाड़ियों में प्रविष्ट हुवा होता है उस समय—

तान्न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसहि तदा सम्पन्नो भवति ।

इसी प्रकार मरने को होता है तो सम्बन्धी उसको चारों ओर बैठे हुवे कहते हैं आप मुझ को जानते हो ? जब तक शरीर से नहीं निकलता तभी तक जानता है और जब शरीर से निकलता है तब इन्हीं रश्मियों द्वारा ऊपर जाता है यदि वह विद्वान् होता है तो—

स ओमिति वाहोद्वामीयते स यावत् क्षिप्ये न्यन-स्ताव दादित्यं गच्छति ।

निश्चय करके ओ३म् का ध्यान करता हुवा ऊपर को जाता है। जब तक मन का क्षय नहीं होता तब तक वह आदित्य को प्राप्त होता है।

एतद्वै लोक द्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधो विदुषां ।

निश्चय करके यही ब्रह्मलोक का द्वार है जो विद्वानों के लिये खुला है और अविद्वानों के लिये बन्द है। प्रजापति ने कहा—

यः आत्मा अपहत पाप्मा विजारोवि मृत्युविशोको विजघत्सो पिपासः सत्य काम सत्य संकल्प सोऽन्वेष्टव्य

विजिज्ञासितव्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्त मात्मानं मनुविद्य विजानातीति ।

जो परमात्मा पाप रहित मृत्यु से रहित शोक रहित क्षुधा रहित पिपासा रहित सत्य की कामना वाला और सत्य संकल्प वाला है वही खोजने योग्य है और वही जिज्ञासा योग्य है । जो उस आत्मा को खोज कर जानते हैं वह लोकों और कामनाओं को प्राप्त होते हैं उसका इस प्रकार विचार किया जाता है कि—

एवोक्षिणि पुरुषो दृक्ष्यत् एषात्मेति होवाचै तद मृतमभय तद् ब्रह्मेति ।

जो यह पुरुष अक्षि में दीखता है यही आत्मा है यही अमृत अ भय ब्रह्म है अथवा—

यः एष स्वप्ने महीयमान चरत्येष आत्मेति हो वाच यद् मृतमभय मेतद्ब्रह्मेति ।

ये जो स्वप्न में अपनी महिमा का अनुभव करता हुवा विचरता है ये ही आत्मा है इतना कह कर बोले कि यही अमृत है और यही अभय ब्रह्म है पुनः बोले कि:—

तयैतत् सुप्तः संप्रसन्न स्वप्नमभिजानात्येषात्मेति हो वाच यद् मृतमभय मेतद्ब्रह्मेति ।

वह आत्मा जिस अवस्था में सोया हुवा अपने स्वरूप में

स्थित भले प्रकार आनन्द को अनुभव करता हुवा स्वप्न को नहीं जानता यह ही आत्मा है। फिर बोले—

एव मेवैष्य संप्रदायो अस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः।

वैसे ही यह आत्मा इस शरीर से उड़ परम ज्योति को प्राप्त होकर अपने स्वरूप में प्राप्त होता है वह उत्तम पुरुष है।

स तत्र पर्यति जक्षन्, क्रीडन्, रममाणः, स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनम् स्मरन्निदं शरीरं स यथा प्रयोग्य आचरणो मुक्तः सएवाय मस्मिन्शरीरे प्राणो युक्तः।

उस अवस्था में यह शरीर कि जिससे वह जन्मा था उसको स्मरण न करता हुवा यह हँसता हुवा प्रसन्न होकर स्त्रियों के साथ सुन्दर विमानों में मित्र देवताओं के साथ क्रीड़ा करता हुवा रमण करता हुवा सर्वत्र विचरता है हे इन्द्र! जैसे रथ में घोड़ा जुड़ा हुवा होता है वैसे ही यह प्राण शरीर में जुड़ा हुवा है। जहां चक्षु आकाश में अनुगत हैं वह चाक्षुष पुरुष है उसके दर्शन के लिए चक्षु है इसको 'सूंघूं' ये जानता है इसके गन्ध ग्रहणार्थ यह प्राण इन्द्रिय है और जो इसको 'बोलूं' यह जानता है और जो 'श्रवण करूं' यह जानता है वह आत्मा है भाषणार्थ वाणी और श्रोत्र हैं:—

पथयो वेदेहं मन्वातीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते।

जो इसका मनन करूँ यह जानता है वह आत्मा है इस आत्मा का मन ही दिव्य चक्षु है वह यह आत्मा इस दिव्य चक्षु रूप मन से इन कामनाओं को देखता हुवा रमण करता है। प्रजापति बोले कि यह जो देवता निश्चय करके उस ब्रह्मलोक में आत्मा की उपासना करते हैं इसी कारण उसको सब लोक और सब कामनायें प्राप्त होती हैं वह सब लोक लोकान्तरों और सब कामनाओं को प्राप्त होता है जो आत्मा को खोज कर जानता है वह प्रजापति ने उपदेश किया:—

आकाशो वै नाम रूप योनिर्वहिता ते दन्त तद् ब्रह्म तद्मृतम् स आत्मा प्रजापतेः समावेक्ष्य प्रपद्येसोऽहं भवामि ब्राह्मणानां राज्ञां यशो विशाम्।

निश्चय करके ब्रह्म ही नाम और रूप का निर्वाहक अर्थात् प्रकाशक है वह नाम रूप जिसके मध्य में वर्तमान है. वह ब्रह्म है। वह अमृत है वही सब जगत का आत्मा सर्व व्यापक है मैं उस सम्पूर्ण प्रजा के स्वामी सर्व पालक ब्रह्म की शरण को प्राप्त होऊँ मैं यशस्वी होऊँ ब्राह्मणों के मध्य यश को क्षत्रियों के मध्य यश को और वैश्यों के मध्य यश को प्राप्त होऊँ वह मैं स्त्रियों के मध्य यशस्वी होऊँ। हे भगवन्! श्वेत रक्त दन्त

रहित अर्थात् यश बल वीर्य का नाश करने वाली रक्त योनि को प्राप्त न हों जो इस प्रकार जानेगा और परमेश्वर से प्रार्थना करेगा वह 'न च पुनरा वर्तते न च पुनरा वर्तते' वह पुनः जन्म मरण के आवर्त में न फँसेगा मैं प्रतिज्ञा कर सकता हूँ कि फिर उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती इति ।

याज्ञवल्क्य का जनक को उपदेश

राजा जनक ने संन्यासी ब्रह्म वेत्ताओं के मिलने के लिए एक समय नियत कर रखा था । उस काल में जनक बैठे हुए किसी ब्रह्म ज्ञानी की प्रतीक्षा कर रहे थे कि इतने में याज्ञवल्क्य उनके समीप आ उपस्थित हुए। उनको देख कर राजा जनक ने आदर पूर्वक पूछा कि भगवन् ! आप किस निमित्त पधारे हैं क्या गौ लेने के लिये अथवा मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के लिये ? तदनन्तर याज्ञवल्क्य ने कहा हे राजन् ! जो कुछ तुमको किसी ने बतलाया है वह सब सुनाओ । तब राजा जनक बोले कि हे भगवन् ! शैलिनी शैलन के पुत्र जित्वा ब्राह्मण ने मेरे प्रति वाणी को ब्रह्म कथन किया है। और सत्व के उदङ्क ने प्राण को ब्रह्म बतलाया है। और वर्कु ने मुझे कहा है कि चक्षु ब्रह्म है । हे भगवन् ! भरद्वाज गोत्रोत्पन्न गर्धवी व्यपति ब्राह्मण ने मेरे प्रति उपदेश किया है कि श्रोत्र ही ब्रह्म है । और जाबाला के पुत्र सत्यकाम ने निश्चय करके मन ही ब्रह्म बतलाया है, और शकल के पुत्र विदग्ध ने निश्चय करके हृदय को ब्रह्म बतलाया है । तदनन्तर महर्षि याज्ञवल्क्य बोले कि

हे राजन् ! जिस प्रकार 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्' इन्हों से शिक्षा पाया हुआ पुरुष कहता है उसी प्रकार आपके प्रति वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, हृदय, इनको ब्रह्म कथन किया है क्यों कि बिना कहे अथवा जीवन या चेष्टा बिना देखे, बिना सुने, बिना जाने, और बिना भावना के क्या फल हो सकता है ? आप को उन्होंने वाग्रूप ब्रह्म का घर और शरीर भी कथन किया। या नहीं ?

तब राजा ने कहा कि मुझको इनका उपदेश नहीं किया तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य बोले—यह तो इन वागादि ब्रह्म का पूर्ण उपदेश नहीं। तब महाराज बोले भगवन् ! आप ही कृपा करके पूर्ण उपदेश करें। ऋषि बोले कि हे सम्राट् ! वाणी घर, आकाश शरीर, प्रज्ञा नाम वाला ब्रह्मबन्धु ज्ञापिनी अध्यात्म-वायु सहित घ्राण इन्द्रिय यही प्राण प्रिय का आयतन और आकाश उसकी प्रतिष्ठा है यह प्राण रूप प्रिय नाम वाला ब्रह्म चक्षु इन्द्रियगुह आकाश शरीर आदित्य सत्य नाम वाला ब्रह्म श्रोत्र आयतन आकाश प्रतिष्ठा अनन्त नाम वाला ब्रह्म और मन आयतन नाम वाला ब्रह्म हृदय उसका घर और आकाश प्रतिष्ठा और स्थिति नाम वाला ब्रह्म आदि नामों से इस ब्रह्म की जो उपासना करता है वह देवताओं में विराजमान होता है उसको जीवन परित्याग नहीं करता सब भूत उसकी रक्षा करते हैं तथा वह प्राणवित् विद्वानों में माना जाता है और चक्षु उसको कभी परित्याग नहीं करता श्रवण शक्ति बुद्धि को करता

हुआ वह ज्ञान स्वरूप होता हुवा उसका हृदय बलवान् होता है और सब भूत उसकी रक्षा करते हैं तब राजा जनक ने पांच सहस्र गौ और पांच हाथी और कितने ही बड़े बड़े बैल याज्ञवल्क्य की भेट किये, तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि मेरे पिता की यह आज्ञा थी कि जब तक शिष्य को पूर्ण ज्ञान न हो जाय तब तक उससे कुछ न लेना चाहिये। तदन्तर राजा जनक अपने आसन से उठकर याज्ञवल्क्य से बोले—कि हे भगवन्! आपको मेरा नमस्कार हो और कृपा कर आप मुझको उपदेश कर कृतार्थ करें। तब ऋषि बोले कि हे सम्राट्! जिस प्रकार कोई पुरुष बड़ी यात्रा पूर्ण करने के लिये भूमि में रथादिकों का और जल में नावादिकों का आश्रय लेता है इसी प्रकार आप भी परलोक यात्रा को पूर्ण करने के लिये उपनिषदों के आश्रित हैं और वागादि विषयक ज्ञान से सम्पन्न है अर्थात् वेद, श्रुति उपनिषद् वा ऐश्वर्यवान् होने से पूज्य हैं परन्तु मैं पूछता हूं कि आप देह त्यागानन्तर वागादि ब्रह्मज्ञान विषय से कहां जायगे। राजा बोला भगवन्! मैं नहीं जानता आप ही जानते हैं सो कृपा कर बतलाइये कि मैं कहाँ जाऊँगा? तब ऋषि बोले कि—सुन हम बतलाते है जहाँ तू जायगा। जाग्रत अवस्था में जो दाईं अक्षिगत पुरुष है इसका नाम इन्ध है। देवता इन्ध नाम को छुपा कर इन्द्र कहते हैं, क्योंकि देवता परोक्ष से प्यार और प्रत्यक्ष से द्वेष करते हैं और जो बाईं आँख में पुरुष है वह इन्द्र की इन्द्राणी कहाती है। हृदय अन्तरवर्ति इन दोनों का

शयन स्थान है और हृदयावर्ति रक्त पिण्ड अर्थात् खाद्य अन्न का अत्यन्त सूक्ष्म भाग दोनों का अन्न है, और हृदय के ऊपर का जल अर्थात् लिपटा हुआ मांस ओढ़ने का वस्त्र है। हृदय से ऊपर की ओर जाने वाली नाड़ी इनकी संचारणी अर्थात् जाग्रत में आने के लिये सड़क है। जो हृदय के भीतर बाल के सहस्र भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्म हिता नाम वाली नाड़ी है इन्हीं के द्वारा इस समस्त देह में व्याप्त होता हुआ इनका भोग बनता है। इस कारण जीवात्मा विश्व की अपेक्षा सूक्ष्म आहार वाला है। दशों प्राण जिसमें दशों दिशा है।

स एष नेतिनेत्यात्मा अगृह्योनहि गृह्यतेऽशीर्यो नहि शीर्यतेऽसंगो नहि सज्जतेऽसितो न व्यथते नक्षति।

वह नेति नेति शब्दों द्वारा बोधन किया आत्मा इन इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य नहीं कभी क्षीण नहीं होता बंधन से रहित दुःखी न होने से आनन्द स्वरूप और एक रस रहने से सन्मात्र कहा है। अर्थात् जो जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं का अभिमानी है वही उपाधि से निर्मुक्त हुआ हुआ नेति नेति वाक्यों के द्वारा कथन किया गया है। एक समय राजा जनक बोले कि हे याज्ञवल्क्य! 'किं ज्योतिरयं पुरुषः' इस पुरुष की ज्योति क्या है अर्थात् किस प्रकार से जाग्रत में व्यवहार करता है 'आदित्य ज्योतिः सम्राडिति' हे सम्राट्! आदित्य की ज्योति से व्यवहार करता है पुनः पूछा।

अस्तमित्यादित्यचन्द्रमस्य स्तमिते किं ज्योति रेवायं पुरुष इति।

सूर्य चन्द्रमा के अस्त होने पर जब अंधेरे में कोई प्रकाश नहीं होता और आकाश बादलों से ढका हुआ होता है तब कहते हैं "आजा" तो बाणी रूप ज्योति से ही अपना व्यवहार करता है। तो फिर जनक बोले जब स्वप्न में यह कोई ज्योति नहीं रहती तब पुरुष किस ज्योति से स्वप्नावस्था का व्यवहार करता है। तदन्तर याज्ञवल्क्य बोले कि हे राजन्! "आत्मैवास्य ज्योतिर्भवति" इस पुरुष का आत्मा ही ज्योति होता है।

आत्मनैवायं ज्योतिषां आस्तेपद्यते कार्य कुरुते विपद्यति।

आत्म ज्योति से यह कर्म करता है, बैठता है, जाता है और लौट आता है 'कतमात्मेति' राजा ने पूछा वह कौन आत्मा है। उत्तर—

योऽयं विज्ञानमय प्राणेषु हृद्यान्तर ज्योतिः पुरुषः।

जो विज्ञानमय बुद्धि का स्वामी जिस के आश्रय से प्राण शरीर में चेष्टा करता है वही आत्मा स्वयं प्रकाश है वही बुद्धि की समीपता से उसके समान धर्मों को धारण करता हुआ इस लोक और परलोक में विचरता है। अन्तःकरण के सम्बन्ध से शब्दादि विषयों का अनुभव करता और कर्मेन्द्रिय से अनेक प्रकार की चेष्टा करता हुआ कभी स्वप्न को भोग कर जाग्रत में

और जाग्रत को भोग कर स्वप्नावस्था में जाता है। जिस जिस शरीर को यह धारण करता हुआ जिस२ शरीर के साथ मिलता है उस२ के धर्मों को धारण करके अपने कर्मों का फल भोगता है और भोग प्रद कर्म के समाप्त होने पर पुनः जन्मान्तर को प्राप्त होता है।

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य ह एव स्थाने भवतः इदं च परलोक स्थानं च सन्ध्यं तृतीयं।

इसके दो ही स्थान हैं इन दोनों में से कभी जाग्रत और जाग्रत से कभी स्वप्न में आता हुवा अवस्थाओं से भिन्न प्रतीत होता हुवा यह आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप है जैसे कर्म करता है वैसा जन्म धारण करता है और उसी के अनुसार सुख-दुःख का भोक्ता होता है जाग्रत अवस्था की वासनाओं द्वारा स्वप्न में नानाविध रचना करता हुवा सुख दु खादि का अनुभव करता है परन्तु अपने स्वरूप से भिन्न इस अवस्था में और कोई ज्योति नहीं होती।

न तत्र रथा न रथयोगाः न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथ योग्यान् पथः सृजते।

इस अवस्था में रथ घोड़े और उनके चलने योग्य मार्ग नहीं होते पर तो भी वह जाग्रत वासना के प्रभाव से पदार्थों की कल्पना कर लेता है। उसी प्रकार—

न तत्रानन्दाः मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान् मुदः सृजते।

जाग्रत सम्बन्धी आनन्द हर्ष भोजनादि से प्रसन्नता आदि कुछ नहीं होते परन्तु कल्पना कर लेता है।

न तत्र वेषान्ताः पुष्करिण्यश्रवन्तो भवन्त्यथ वेषान्ता पुष्करिण्यो स्रवत्य सृजते सहि कर्त्ता।

क्षुद्र नदियें, तड़ाग, बड़ी नदियें इत्यादि पदार्थ नहीं होते पर वह आत्मा इस सारे को वासना से रच लेता है। इसमें यह प्रमाण है :—

स्वप्नेन शरीरमभि प्रहत्या, सुप्तःसुप्ता नाभिचाकशीति।
शुक्र मादाय पुनरेति स्थानं, हिरण्मयः पुरुष एक हंसः॥
प्राणेन रक्षन्न वरं कुलायं, वहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा॥
स ईयते मृतो यत्र कामं, हिरण्मयः पुरुष एक हंसः॥

स्वप्न से कल्पित पदार्थों को नष्ट कर पुनः अपने इसी प्रकाश रूप से जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है। यह ज्योति स्वरूप निर्मोही हो जाता है। जहां इसकी मर्जी है जाग्रतादि अवस्थाओं में गमन करने से इसको हंस कहते हैं जिस प्रकार देश देशान्तरों में हंस गमन करके पुनः अपने घौंसले में आकर विश्राम पाता है इसी प्रकार यह एक हंस पांच प्राणों द्वारा अपने शरीर की रक्षा करता हुवा स्वप्न से पुनः जाग्रत में आता है :—

स्वप्नान्त उच्चावच मीयमानो, रूपाणि देवः कुरुतेबहूनि।
उते स्त्रिभिः सह मोद मानो, चक्षाद्रुते वापिभयानि पश्यन्॥

स्वप्न में देव मनुष्य पशू पक्ष्यादि नाना प्रकार के रूपों की कल्पना करता हुआ कभी स्त्रियों के साथ आनन्द को प्राप्त होता है कभी अन्य सम्बन्धियों के साथ भोजन करता हुवा हँसता है, और कभी भय को प्राप्त होता है। इस प्रकार लोग इस आत्मा की स्वप्न की रचना को जानते हैं और इसकी स्वयं ज्योति का विवेक नहीं कर सकते। कई वैद्य अर्थात् चिकित्सक कहते हैं कि गाढ़ निद्रा में सोये हुवे पुरुष को सहसा न जगावे क्योंकि बलात् जगाने से किसी इन्द्रिय की मात्रा सूक्ष्म शक्ति के साथ न ला सकने के कारण कई प्रकार के शरीर सम्बन्धी विकारों से आर्त हो जाता है जिसकी चिकित्सा करनी कठिन होती है। कई लोगों का कथन है कि जीव जाग्रत देश सम्बन्धी पदार्थों को ही स्वप्न में देखता है। वासनामय पदार्थों को नहीं। परन्तु यह कथन ठीक नहीं क्योंकि इस में लिंग शरीर को स्थूल शरीर से बाहर मानना पड़ेगा। अतः पुरुष को स्वप्न में ज्योति मानना ही ठीक है। हे राजन्! निश्चय करके यह स्वप्नावस्था का साक्षी आत्मा स्वयं ज्योति स्वरूप सम्यक् प्रकार पुण्य-पाप के फल रूपी सुख-दुख को भोग कर सुषुप्ति में आता है और वहां वृत्तियों के शान्त हो जाने के कारण परमानन्द का अनुभव करता हुआ सुषुप्ति से स्वप्न को प्राप्त होता है। इस प्रकार अवस्थाओं को भोगता हुआ आप भी असंग रहता है। हे राजन्! इस रीति से यह आत्मा जाग्रतावस्था में नाना प्रकार के विषय-भोग से शांत हुआ अपने पुण्य वश से

स्वप्न को न प्राप्त होकर सुषुप्ति को प्राप्त हो परमानन्द का अनुभव करता है। परन्तु तो भी इसके रूपों में कोई विचार नहीं होता। तब राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को बहुत गौ दान कीं, और कहा कृपा करके और भी उपदेश करें।

ऋषि बोले हे राजन् !—

तद्यथा महामत्स्य उभे कूले अनुसञ्चरति पूर्वं चापर चैवमेवायं पुरुषः एतावनुभवन्तावन् संचरति स्वप्नान्तं च बुद्धान्तं च।

जिस प्रकार महामत्स्य नदी की लहरों से उनके दोनों किनारों पर विचरता है इसी प्रकार वह पुरुष कभी सुषुप्ति और कभी जाग्रतावस्था को प्राप्त होता है।

तद्यथास्मिन्नाकाशेश्येनो वा सुपर्णोविपरित्य श्रान्तः संहरत्यपक्षौ सल्लैव धृयतएव मेवायं पुरुष एतास्मान्ताय धावति यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति।

जिस प्रकार आकाश में वेग वाला पक्षी उड़कर शान्त हुवा हुवा अपने दोनों पक्षों को सकोड़ कर घोंसले में प्रवेश करता है इसी प्रकार यह पुरुष जाग्रत और स्वप्न में भ्रमण कर थकित होने के कारण सुषुप्ति को प्राप्त होता है। जहां सोया हुवा किसी पदार्थ की कामना नहीं करता। जो नाड़ियां बाल के सहस्र भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्म हैं और जिन के शुक्ल,

नील, पीत, हरित तथा लोहित वर्ण वाला भुक्त अन्न का परिणाम रूप रस बहता है। इन से संचारण करता हुवा आत्मा जब स्वप्न को प्राप्त होता है तो इसको मानो कोई तस्करादिक मार रहे हैं, कोई वश कर रहे हैं, कोई हाथी की भांति भाग रहे हैं तथा कोई गढ़े में गिरा रहे हैं, इस प्रकार इसको जैसे-जैसे जाग्रतावस्था में संस्कार होते हैं ऐसे ही महा अविद्या से सुख दुःखादि को मान लेता है परन्तु—

यत्र देव इव राजते वाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमोलोकः।

जब यह जान लेता है राजा की तरह यह सब मैं ही हूँ तब देखता है, किन्तु राजा की भांति परमानन्द से देदीप्यमान होता है। यही इसका परमलोक अर्थात् अन्तःपुर है। हे राजन्!—

तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वप्तो न बाह्यं किंचन् वेद नान्तरम्।

जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी प्रिय स्त्री के साथ आनन्द में मग्न होकर बाहर और भीतर के किसी विषय को नहीं जानता हुवा तन्मय हो जाता है।

एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिसक्तो न बाह्यं किंचन् वेद नान्तरम्।

इसी प्रकार यह जीव प्राज्ञ परमात्मा अर्थात् अपने

स्वरूप के साथ मिल कर अपने धर्म को धारण कर शान्त स्वरूप को अनुभव करता हुआ वाह्य आन्तर्य किसी भी विषय को नहीं जानता। निश्चय करके यह अवस्था शोक से रहित होती है। क्योंकि उस समय सांसारिक कामनाओं से लिपायमान नहीं होता।

अत्र पिता अपिता भवति, माता अमाता भवति लोका अलोकाः वेदा अवेदाः अत्रस्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौलकस, श्रवणोऽश्रवण, तापसोऽतापस नन्वागतं पुण्येन नन्वागतं पापेन तीर्णोहि तदा सर्वान् शोकान् हृदयस्य भवति।

सुषुप्ति मोक्ष और समाधि में जीवन को ब्रह्म रूपता प्राप्त होती है जैसा कि कपिल भगवान् सांख्य में कथन करते हैं।

समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता।

यहां माता अमाता हो जाती है, पिता पिता नहीं रहता, लोक लोक नहीं रहते, वेद वेद नहीं, चोर चोर नहीं, ब्रह्महत्यारा ब्रह्महत्यारा नहीं, वर्णसंकर वर्णसंकर नहीं, संन्यासी संन्यासी नहीं, तथा तपस्वी तपस्वी नहीं रहता, क्योंकि इसके ब्रह्मानन्द में नितान्त मग्न रहने से माता-पिता आदिक ज्ञान उसका रूप ही हो जाता है। न यहां पाप आते हैं न पुण्य वह हृदय के सब शोकों से पार हो जाता है।

स यथा शकुनि सूत्र यन्त्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं

पतित्वा नियत्रायतनमलब्ध्वा बन्धमेवो पश्यत एव मेवखलु सोम्यै तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा नियत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राण बन्धने हि सोम्य मन इति ।

छान्दोग्योपनिषद् में आरुणि उद्दालक अपने प्रिय पुत्र श्वेतकेतु के प्रति कथन करते हैं कि—

हे सौम्य ! स्वप्नान्तं मे विजानीहीति ।

मुझ से सुषुप्ति अवस्था की विद्या जानो ।

यत्रैतत्पुरुषः स्वपितिनाम सत्ता सोम्य सदा सम्पन्नो भवति ।

जिस काल में यह पुरुष सो जाता है उस समय सत्ता ब्रह्म के साथ मिल जाती है । अर्थात् अपने आप को प्राप्त हो जाता है । इस कारण इसको स्वपिति कहते हैं क्योंकि अपने स्वरूप में स्थित होता है । जैसे वह पक्षी सूत्र से बन्धा हुआ चारों ओर गिर कर अन्यत्र स्थान न लाभ करता हुआ बन्धन का ही आश्रय करता है उसी प्रकार निश्चय करके हे सौम्य ! यह मन प्राणों से बन्धा हुआ यहां देखता हुआ नहीं देखता, सूंघता हुवा नहीं सूँघता, रस लेता हुवा नहीं लेता, बोलता हुवा नहीं बोलता, सुनता हुवा नहीं सुनता, मन से संकल्प नहीं करता और स्पर्श नहीं करता, जो वह परमात्मा से भिन्न किसी अन्य विषय को नहीं जानता, गन्ध ग्राहक शक्ति रसात्मक शक्ति वाक् शक्ति श्रवण शक्ति मननात्मिका शक्ति, स्पर्श ग्राहक

शक्ति, विज्ञानात्मक शक्ति, लोप नहीं हो जाती किन्तु इस अवस्था में आत्मा से अतिरिक्त गन्ध, शब्द स्पर्श रस आदि कोई नहीं रहता, सब आनन्द स्वरूप आत्मा ही में मिल जाता है। जिस अवस्था में वृत्तियों के विषय बाह्य पदार्थ उपस्थित रहते हैं।

तत्रअन्योऽन्यत्पश्येदन्योन्यज्जिघ्रेदन्योन्यद् दृश्येदन्योन्यद्वदेदन्योन्च्छृणुयादन्योन्यत्मन्वीतान्योन्यत्स्पृशेदन्योन्यद्विजानीयात्।

उसी अवस्था में दूसरा दूसरे को देखता है, सूंघता है, रस लेता है, कथन करता है, सुनता है, मनन करता है, स्पर्श करता है, और दूसरा दूसरे को जानता है परन्तु यहां कोई आत्मा से भिन्न नहीं रहता। हे राजन्! एक समुद्र समान निरञ्जन अद्वैत परमात्मा जो सबका दृष्टा है वही उसका ब्रह्म-लोक है।

एषास्य परमागतिरेषास्य परमासम्पदेषोऽस्य परमोलोकः एषोस्य परमानन्दः एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति।

वही उसकी परम गति, वही उसकी सबसे उत्कृष्ट सम्पद विभूति और वही उसका परमानन्द है। क्योंकि उसी परमानन्द के किसी एक अंश को लेकर अन्य सब भूत आनन्द

वाले होते हैं उस परमानन्द की निरतिशयता इस प्रकार वर्णित है।

स यो मनुष्याणां साध्य समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैः मानुष्य कैर्भोगैः सम्पन्नतमः स मनुष्याणां परमानन्द।

वह जो मनुष्यों में सब प्रकार के भोग साधनों से सम्पन्न तथा अन्यों का अधिपति होना पुरुष का परमानन्द है।

"अथ ये शतं मनुष्याणां आनन्दाः स एकः पितृणां जित लोकानामानन्दः स एको गन्धर्वलोक आनन्दः। अथ ये शतं गन्धर्व लोकानन्दा स एकः कर्म देवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसम्पद्यते। अथ ये शतं कर्म देवानामानन्दाः स एकः आजान देवानामानन्दः यश्च श्रोत्रियो बृजनो कामहतः। अथ ये शतमाजीन देवानामानन्दाः स एकः प्रजापते लोकानन्दो यश्च श्रोत्रियो बृजनो कामहतः अथैष एव परमानन्द एष ब्रह्म लोक सम्राडिति होवाच याज्ञवल्क्यः"।

मनुष्य के सौ आनन्द एकत्रित किये जायं तो पितरों का एक आनन्द होता है। पितरों से सौ गुणा आनन्द गन्धर्वों को है। गन्धर्वों से सौ गुणा आनन्द कर्मी देवों को है। यदि कर्मी देवों के सौ आनन्द एकत्रित किए जायं तो आजान देवों का एक आनन्द होता है। जो पाप रहित निष्काम श्रोत्रिय होता है

उसका आनन्द भी आजान देवों के समान है। आजान देवों से सौ गुणा प्रजापति लोक में आनन्द है और वैसा ही पाप रहित निष्काम वेदवेत्ता श्रोत्रिय का आनन्द होता है। यदि प्रजापति के सौ आनन्द एकत्रित किये जायं तो वह एक ब्रह्म लोक का आनन्द है अर्थात् सबसे उत्कृष्ट निरतिशय एक मात्र परमात्मा का ही आनन्द है। हे सम्राट्! यही परमानन्द है, यही ब्रह्म लोक है और यही याज्ञवल्क्य ने जनक को उपदेश किया और पुनः कहा :—

"सवाऽयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमयः आपोमयः वायुमयः तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयः धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदमुभयो ओं इति।"

वह यह आत्मा ब्रह्म विज्ञानमय, मनोमय चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, पृथिवीमय, आपोमय, वायुमय, आकाशमय, तेजमय, अतेजमय, काममय, अकाममय, क्रोधमय, अक्रोधमय, धर्ममय, अधर्ममय अर्थात् सर्वमय है। "यथाकारी तथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुभवति पापकारी पापी भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन" यह जैसे कर्म करता है वैसा ही हो जाता है पुण्य कर्मों से पुण्यात्मा पाप कर्मों से पापात्मा।

"अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुषः।"

यहाँ से आगे कहते हैं कि यह पुरुष अपने संकल्प

अथवा इरादों का बना हुवा है।

"स यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत् क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते। यो कामो निष्कामः आप्त-कामः आत्मकामः न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति"।

यह जैसा संकल्प करता है वैसे ही निश्चय वाला होता है जैसा यह निश्चय करके अपने आप को मान लेता है वैसा ही हो जाता है जो अकाम अर्थात् जिसकी कामना पूर्ण हो गई हैं और निष्काम है केवल एक आत्मा को ही कामना वाला है योगी की भान्ति उसके प्राण उत्क्रमण नहीं होते। वह यही ब्रह्म बन कर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

ऊर्ण नाभिर्यथा तन्तून् सृजते संहरत्यपि।
जाग्रत् स्वप्ने तथा जीवोगच्छत्यागच्छते पुनः॥
नेत्रस्थं जाग्रतं विद्यात् कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तू तूरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्॥

जैसे मकड़ी जाले के तारों को उत्पन्न करती है और उनका संहार करती है इसी प्रकार जीव जाग्रत् और स्वप्न में जाता है और चला आता है अर्थात् जीव के जाने से जाग्रत् वा स्वप्न जगत् उत्पन्न हो जाता है। और उसके चले आने से लय हो जाता है। नेत्र स्थान में जाग्रत् अवस्था जाननी चाहिए

और कंठ देश में स्वप्न को देखता है। सुषुप्ति अवस्था में हृदयस्थ होता है। और तूरियावस्था में मूर्धा में स्थित होता है। यह आत्मदेव जो हमारा अपना आपा है स्वयं प्रकाश स्वरूप है, जो सब समय हमारे साथ रहता है। घोर अन्धेरे में भी हमें नहीं छोड़ता इसको पूजो यही सम्पूर्ण भूतों का राजा है और जैसे रथ की नाभि और नाभि में अरे लगे होते हैं।

"एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वेसर्व एव आत्मनि समर्पिताः।"

इसी प्रकार सब भूत, सब देवता, सब लोक, सब प्राण, और सब जीव उसके आश्रित हैं। इसका सप्तचक्र रूपी सात मंजिल का यह स्थान है :—

आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं।
स्वाधिष्ठान मपि प्रभाकरसमं बालान्तषट् पत्रकम्॥
रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाडयं फकारान्तकं।
पत्रै द्वादशभिरनाहतपुरं हैमं कठान्ता व्रतम् ॥१॥
पत्रैः सत्वर षोडषै शशधरं ज्योतिर्विशुद्धाम्बुजं।
सत्यानन्द मयं सदा चिन्मयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम्॥
तस्माद्ध्वंतमं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं।
हंसोयक्षर युग्मकं द्वयदलं रक्ताम्भ मात्राम्बुजम् ॥२॥

मूलाधार में कुण्डलिनी देवी सहित गणेश अधिष्ठात्री

देवता, किल जाप, लाल रंग ऋद्धि सिद्धि चंवर ढुलाती हैं। अर्थात् गुदा शिश्न के मध्यभाग में तेज समान चतुष्पैखरी चार दलों में चतुर अक्षर व. स. जिनके अन्त में होवें वे वसान्त व. ष. स. इनके अन्त में हैं यहीं कामदेव निवास करते हैं। जो प्रथम सर्प के आकार को धारण कर सहस्रों हो जाते हैं। दूसरा लिंग के ऊर्ध्व भाग में स्वाधिष्ठान पीतवर्ण षट्पैखुरी··· दृश्य को अपने में लय कर अन्तःपुर रणवास हृदयाकाश में आकर अपनी प्यारी स्त्री प्राज्ञ रूपी आत्मा से गले लगाया हुवा न बाहर देखता है और न भीतर अर्थात् एक हो जाता है। यह निर्मोही पुरुष अकेला हंस स्वयं प्रकाश क्रीड़ा करता है। लोग इसके दृश्य अथवा स्थान को देखते हैं और इस खेल खेलने वाले को कोई नहीं देखता।

इस देह के अन्दर गुदास्थान से लेकर दशम द्वार पर्यन्त ये सात चक्र कमल व्याप्त हो रहे हैं। आधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र और सातवां शून्य चक्र है।

१ आधार चक्र गुदास्थान से दो उंगल ऊपर रहता है। उस चक्र के चार दल हैं अर्थात् चार पंखड़ी हैं, उन चारों दलों पर वासान्त अर्थात् (व शं ष सं) ये चार अक्षर हैं और कुण्डलिनी देवी सहित गणेश अधिष्ठाता देवता है। लिंक जाप है, लाल रंग है, ऋद्धि सिद्धि चंवर ढुलाती है, यहीं कामदेव निवास करते है जो प्रथम सर्प के आकार को धारण कर सहस्रों हो जाते हैं।

२ दूसरा उपस्थेन्द्रिय के मूल में स्वाधिष्ठान चक्र है, स्वर्ण के समान पीत वर्ण है; इसके षट् दल हैं। प्रत्येक दल पर क्रम से (यं रं लं वं भं मं) ये षट् अक्षर हैं और प्रजापति इसका अधिष्ठाता देवता है ॥

३ मणिपूरक चक्र नाभिस्थान में हैं, इसका इन्द्र नील मणि के समान वर्ण है सूर्य चन्द्रमा के समान राजवाली है। इस के दश दल हैं। प्रत्येक दल पर क्रम से (डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं) ये दस अक्षर हैं और इस चक्र का अधिष्ठाता देवता विष्णु भगवान् है।

४ अनाहत चक्र हृदय देश में है गी के क्षीरवत् श्वेत वर्ण वाला है, इसके द्वादश दल हैं। प्रत्येक दल पर क्रम से कठान्त, (कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं) ये द्वादश अक्षर हैं और इस चक्र का अधिष्ठाता देवता रुद्र भगवान् है।

५ विशुद्ध चक्र कण्ठ देश में रहता है। इसका विचित्र वर्ण षोडश दलों वाला है। प्रत्येक दल पर क्रम से (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) ये १६ षोडश स्वर हैं और यही जीवात्मा के रहने का स्थान है।

६ आज्ञा चक्र विशुद्ध चक्र से ऊपर भ्रू मध्य में रहता है, यत्किंचित् रक्त वर्ण वाला है। इस के दो दल हैं। दोनों दलों पर (हं क्षं) सूर्य चन्द्रमा के समान ये दो अक्षर हैं और यहीं परमात्मा देव का मुख्य निवास स्थान है।

७ आज्ञा चक्र से ऊपर मस्तक में एक सहस्र दलों वाला

पद्म है। इसमें अमृत की वर्षा करने वाला चन्द्रमा गर्भित रहता है। उस चन्द्रमा के अमृत से तृप्त होकर उस सहस्र दल कमल की करणिका दशमद्वार को प्राप्त हुई उन षट् चक्रों में रहती है। यह जीवात्मा उस पद्म का हंस है। जीवात्मा की हंस रूपता क्या है ? इस लोक में जो पक्षी जैसा शब्द बोलता है उसको उसी शब्द के अनुसार नाम से पुकारते हैं। जैसा का का शब्द बोलने वाले पक्षी को काक नाम से पुकारते हैं। तैसे ही यह जीवात्मा भी हृदय कमल में तथा आधार चक्रादिकों में सहिस्मित होकर रात्रि दिन में २१६०० श्वास-प्रश्वासों करके (हंसः) इस मन्त्र का उच्चारण करता है। हकार से प्राण वायु मुख नासिका द्वारा शरीर से बाहर जाता है और सकार से यह प्राण वायु उसी मुख नासिका द्वारा पुनः भीतर प्रवेश करता है। इसी प्रकार प्राणों के श्वास-प्रश्वास करके यह जीवात्मा सर्वदा हंस मंत्र का जप करता है इसी हेतु से श्रुतियों में इस जीवात्मा को 'हंस' इस नाम से कथन किया है। ध्यान करने के लिए उपयोगी जो इस जीवात्मा को हंस रूप करके कथन किया है उसी जीवात्मा को अब पक्षी रूप से कथन करते हैं। जैसे लोक में पक्षी विशेष को हंस कहते हैं तैसे जीवात्मा को भी तत्ववेत्ता पुरुष पक्षी रूप से कथन करते हैं। सब शरीरों में रह कर खाद्य अन्न को पकाने वाला भोक्ता रूप अग्नि तथा भोग्य रस रूप सोम यह इस जीव रूप हंस के दक्षिणोत्तर दो पक्ष हैं और ओंकार रूप मन्त्र इस जीव रूप हंस का शिर है और मूल शक्ति

का क्रिया शक्ति वाला परिणाम विशेष रूप बिन्दु इस जीवरूप हंस का हृदय है और जैसे महादेव का मुख सूर्य अग्नि सोम रूप तीन नेत्रों वाला है तैसे इस जीव रूप हंस का मुख भी सूर्य अग्नि सोम इन तीनों नेत्रों वाला है और इस जीव रूप हंस का एक चरण रुद्र रूप है और दूसरा चरण रुद्राणि रूप है। और त्वं पद का अर्थ जीव रूप हंस ही तत्पदार्थ परब्रह्म रूप है। निरुपाधिक दृष्टि से यह जीव रूप हंस निर्गुण ब्रह्मरूप है और सोपाधिक दृष्टि से सगुण ब्रह्मरूप है। वह सगुण ब्रह्म वाम भाग में अग्नि रूप है और दक्षिण भाग में सोम रूप है और यह जीव रूप हंस करोड़ों सूर्यों के समान तेज वाला है तथा नख से शिखा पर्यन्त इस शरीर में व्याप्त हो रहा है फिर भी हृदय कमल में विशेष करके रहता है। हृदय कमल के अष्ट दल हैं। प्रत्येक दल पर इस जीव रूप हंस की गति होने से अष्ट प्रकार की स्थिति वाला होता है। मन के सहित यह जीव रूप हंस जब हृदय कमल के पूर्व दिशा के दल पर स्थित होता है तब जीव को पुण्य कर्म करने की बुद्धि होती है और जब हृदय कमल के अग्नि कोण के दल पर स्थित होता है तब निद्रा आलस्य आदिक विकार उत्पन्न होते हैं और जब दक्षिण दिशा के दल पर स्थित होता है तब क्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं। जब यह जीव रूप हंस नैऋत्य कोण के दल पर स्थित होता है तब जीव को पाप कर्म करने की बुद्धि उत्पन्न होती है। और जब यह जीव रूप हंस पश्चिम दिशा के दल

पर स्थित होता है तब इस जीव को नाना प्रकार के व्यवहार करने में प्रीति उत्पन्न होती है । जब यह जीव रूप हंस उत्तर दिशा के दल पर स्थित होता तब इसे स्त्री-प्रसंग की इच्छा होती है। और जब यह जीव रूप हंस ईशाण कोण के दल पर स्थित होता है तब इसको दान करने में प्रीति उत्पन्न होती है। जब यह जीव रूप हंस अष्ट दल कमल के मध्य देश में स्थित होता है तब जैसे लोक प्रसिद्ध हंस पक्षी मिश्रित दूध पानी का विभाग करता है तैसे यह जीव रूप हंस भी सत्य असत्य वस्तु का विचार करके सर्व विषय सुखों से विरक्त होता है। और जब यह जीव रूप हृदय कमल के केशर में स्थित हो तो तब इस जीव को जाग्रत अवस्था प्राप्त होती है। जब यह जीव रूप हंस हृदय कमल की कर्णिका में स्थित होता है तब स्वप्न अवस्था को प्राप्त होता है। और जब हृदय कमल की कर्णिका के मध्य देश में स्थित जो रक्त वर्ण वाला रुधिर का पिण्ड विशेष है उसमें जब यह जीव रूप हंस स्थित होता है तब सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है। और जब यह जीव रूप हंस अपने आप को ब्रह्म रूप करके देखता है उस परिच्छिन्न हृदय कमल के अभिमान को त्याग कर जाग्रतादि तीनों अवस्थाओं से भिन्न तुरीय अवस्था को प्राप्त होता है। तुर्या अवस्था में योगी को आत्म रूप ज्ञेय वस्तु ज्ञाता पुरुष से भिन्न प्रतीत होती है। इसी को सम्प्रज्ञात समाधि नाम से कहा है। इसमें ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता ध्येय वह त्रिपुटी बनी रहती है और

असंप्रज्ञात नामा समाधि में योगी को इस त्रिपुटी का भान नहीं होता है किन्तु अद्वितीय ब्रह्म रूप नाद में लय हो जाती है। इसी को तुर्यातीत अवस्था कहते हैं। ओंकार की अकार उकार मकार बिन्दु और नाद यह पांच मात्रा हैं। अकार उकार मकार यह तीनों मात्रा क्रम से विश्व-तैजस प्राज्ञ इन तीनों के वाचक हैं और अर्धमात्रा रूप बिन्दु नाद दोनों ब्रह्म के वाचक हैं। बिन्दु सविशेष ब्रह्म का वाचक है और नाद निर्विशेष ब्रह्म का वाचक है। तुर्यातीत अवस्था वाला योगी निर्विशेष ब्रह्म को प्राप्त होता है। तुर्यातीत भाव की प्राप्ति के लिए जो यो॰ रूप उपाय बतलाया है वह इस प्रकार है—पूर्व कथन करे जो षट् चक्र उन सहित इस जीव रूप हंस के स्वरूप को भले प्रकार जान कर अपने स्वरूप का चिन्तन करें। तत्पश्चात् अद्वितीय ब्रह्म रूप नाद का चिन्तन करे। आधार चक्र से दशम द्वार पर्यन्त व्यापक रूप से अत्यन्त श्वेत अर्थात् सत्व अद्वितीय ब्रह्म में मन को एकाग्र करके योगी अपने पायुपस्थ दोनों द्वारों को संकोच करके अपने पांव के अंगुष्ठ के अग्रभाग से प्राण वायु को ऊपर आकर्षण करके प्रथम आधार चक्र में स्थापित करे। तत्पश्चात् प्राण वायु को शनैः शनैः स्वाधिष्ठान चक्र में धारण करे। स्वाधिष्ठान चक्र के चारों ओर प्राण वायु के तीन परिक्रमा कराकर मणि पूरक चक्र में स्थापित करे फिर प्राण वायु को अनाहत चक्र में स्थापित करे। तदनन्तर विशुद्ध चक्र में स्थापित करे। फिर मन सहित प्राण को आज्ञा चक्र में ले जावे। तत्पश्चात् प्राणवायु को

दशम द्वार में ले जावे। इस प्रकार जब योगी योगाभ्यास के बल से प्राण को ऊपर ले जाता है और जीव रूप हंस के ध्यान पूर्वक जब ब्रह्म रूप नाद का चिन्तन करते हुवे ऋषि छन्द देवता आदि युक्त हंस मन्त्र का एक कोटि संख्या परिमाण जप करे तब योगी के शरीर में भीतर योग सिद्धि में विश्वास कराने वाले—चिणिनाद १ चिणचिणिनाद २ घण्टानाद ३ शंखनाद ४ तंत्रीनाद ५ तालनाद ६ वेणुनाद ७ भेरीनाद ८ मृदंगनाद ९ मेघ-नाद १० ये दश प्रकार के नाद उत्पन्न होते हैं; इनमें दशवें मेघनाद का पुनः पुनः अभ्यास करने से योगी को वैराग्य और ज्ञान की प्राप्ति होती है। तब संकल्प विकल्प रूप विक्षेप नाश होकर आनन्द स्वरूप स्वयं प्रकाश चैतन्य आत्मा का योगी को प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। उस अवस्था में दृश्य को अपने में लय करके अन्तःपुर रणवास हृदयाकाश में आकर अपनी प्रियतमा स्त्री प्राज्ञ रूपी आत्मा के साथ मिल कर न बाहर देखता है और न भीतर अर्थात् एक हो जाता है। यह निर्मोही पुरुष अकेला हंस स्वयं प्रकाश क्रीड़ा करता है। लोग दृश्य अथवा स्थान को देखते हैं और इस खेल खेलने वाले को कोई नहीं देखता। कैवल्योपनिषद् में लिखा है—

पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवस्ततः सुजातं सकलं विचित्रम् ॥

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों पुरियों में यह जीवात्मा क्रीड़ा करता हुवा तीनों अवस्था के पदार्थों से भिन्न है।

अब हम अगले लेख में ऋषियों और भक्तों का अन्तिम

अनुभव लिखेंगे। जो उसे पढ़ेगा, श्रद्धा और भक्ति से सुनेगा अवश्यमेव मुक्ति को पावेगा और जो संशय उठावेगा वह इस भगवत् वचनानुसार नष्ट हो जायगा। यथा "संशयात्मा विनश्यति" संशयात्मा नष्ट होता है।

अनुभव

जब पुरुष निष्काम अर्थात् आप्तकाम होता है अर्थात् केवल आत्मा ही की कामना जिस को है उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते वह ब्रह्म ही होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है यथा—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्तेकामा येस्य हृदिस्थिताः।
अथमृत्योंऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

जब इसके हृदय से सब विषय-वासना दूर हो जाती हैं अर्थात् छूट जाती हैं तब यह मर्त्य पुरुष अमर हो जाता है और वह यहां हो ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

तद्यथा अहिः निर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्थास्तथैवमेवेदं शरीरं शेते।

जिस प्रकार सर्प अपनी कैंचुली को छोड़ कर निर्मल हो जाता है इसी प्रकार यह ब्रह्मज्ञानी पुरुष मुक्त हो जाता है और जैसे सांप के निकलने से कैंचुली पड़ी रहती है ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी का शरीर भी पड़ा रहता है और किसी का शरीर पाता भी नहीं।

"यथा शरीरो मृतः तेज एवसोऽहम्"

और यह अशरीर अमृत जीवनाधार ब्रह्म ही तेजस्वरूप है वह मैं हूँ यह अपना अनुभव प्रकाश करता है। पुनः ब्रह्मवित् का अनुभव यह है।

अणु पन्था वितत: पुराणो,
मां स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव।
तेन धीरा पीयन्ति ब्रह्मविद्,
स्वर्ग लोकं इत ऊर्ध्वं विमुक्ता॥

यह मार्ग जो अत्यन्त सूक्ष्म और बहुत दूर तक फैला हुआ है सब से पुराना है वह मैंने भले प्रकार पा लिया जिस द्वारा ब्रह्मज्ञानी स्वर्ग लोक से ऊपर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

तस्मिन् शुक्लमुतनीलमाहु:,
पिंगलं हरितं लोहितं च॥
एष पन्था ब्रह्मणादानुवित्त,
स्तेनैति ब्रह्मवित् पुण्यकृत तैजसश्च॥

जिस में शुक्ल नील पिंगल हरित और लोहित वर्ण होता है वह पुरुष अपनी शक्तियों से विचित्र रूपों को धारण करता है और अन्त में ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होता है। यह मार्ग प्रथम ब्रह्म ने अन्वेषण किया है।

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुष: किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनु संजुरेत्।"

यदि यह पुरुष, 'आत्मानं परमात्मानं अहमस्मीति विजानीयात्' भले प्रकार परमेश्वर को जानले कि वह मैं ही हूं वह मेरा अपना आत्मा है "किमिच्छन् कस्य कामाय" तो क्या इच्छा करता हुआ किस कामना के लिए 'शरीर मनुसंजुरेत' शरीर को क्लेश से संत्युक्त करे।

यस्यानुवित्त प्रतिबुद्ध आत्मा-
अस्मिन सन्देहे गहने प्रविष्टः।
स विश्वकृत् स हि सर्वस्यकर्ता,
तस्य लोकः स उ लोक एव॥

जिसमें अनेक प्रकार के संशय होते हैं, शुद्धान्तःकरण से उसको अनुभव करता है, वही अपना आत्मा सबका कर्ता होने से विश्वकृत और सब सृष्टि का वह प्रकाशक है और सब सृष्टि का प्रकाश उस का है।

"इहैव सन्तोथ विद्मस्तद् वयं न चेद्वेदीर्महती विनष्टि"

इहैव सन्तोथ—यहां ही रहते सन्ते, वयं तद् विद्मः—हम उसको जान सकते हैं अथ चेद्वेदी न—और यदि नहीं जाना गया तब तो "महती विनष्टि" बड़ी हानि होगी "एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति" जो उसको जानते हैं अमर होते हैं।

"यदैतदनु पश्यत्यात्मानं देवं अञ्जसा ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते।"

यत् एतं भूतं भव्यस्य ईशानं आत्मानं देवं अञ्जसा अनुपश्यति—जो पुरुष भूत भविष्यत् और वर्तमान के साक्षी आत्मदेव को अभेद रूप से साक्षात् करता है, ततो न विजुगुप्सते—उससे वह ग्लानि को नहीं करता है। क्यों करे? किसकी करे? सब अपना आपा ही हो गया। यथा:—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्ये वानुपश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं न ततो विजुगुप्सते ॥

इससे वह किसी की निन्दा स्तुति नहीं करता क्योंकि निन्दा स्तुति दूसरे की होती है। जब सब को अपना आपा ही पाया और अपरिछिन्न पाया तो परमानन्द प्राप्त हुआ।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यत ॥

'यस्मिन् सर्वाणि भूतानि विजानतः एकत्वं अनुपश्यतः' जिस अवस्था में सब प्राणि चराचर जगत् जानने वाले को अर्थात् एकत्व देखने वाले को 'आत्मा एव अभूत्'—आत्मा ही होता भया 'तत्र को मोहः कः शोकः'—तो वहां क्या मोह क्या शोक रहता है अर्थात् शोक मोह सम्पूर्ण नष्ट हो जाते हैं।

यस्मादर्वाक् सम्वत्सरोभि परिवर्त्तते।
तदेवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासते मृतम् ॥

यस्मात् अर्वाक्—जिस कारण से वाणी सम्वत्सर रूप काल अपने अवयव भूत अहोरात्र के साथ ही परे हट जाता है

अर्थात् अपनी गति से उसे परिच्छिन्न नहीं कर सकता उसको देवता ज्योतियों का ज्योति अर्थात् सूर्यादिकों का प्रकाश जो अमर आत्मा है उसकी उपासना करते हैं। पुनः वह कैसा है:—

यस्मिन्पञ्चजनाः प्रकाशश्च प्रतिष्ठिताः।
तमेवमन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम् ॥

जिसमें पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन प्रकाश ठहरा हुआ है उसी आत्मा को मानने वाला विद्वान् ब्रह्म होकर अमर का अमर बन जाता है।

प्राणस्य प्राण मुत चक्षुषश्चक्षु रुत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्।
मनसो यः मनोविदुः तेनिचक्युर्ब्रह्मपुराणमग्रचम् ॥

और जो उसको प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु, श्रोत्र का श्रोत्र और मन का मन जानते हैं निश्चय करके उन्हीं पुरुषों ने सब के पूज्य शाश्वत ब्रह्म को पा लिया है अर्थात् यही बार-बार अनुभव करता है कि अपना आपा देश काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित अनन्त अपार सुख स्वरूप ब्रह्म है। हे मुमुक्षु जनो! उसी को अपना आपा बार-बार चिन्तन करो नहीं तो अन्धकार के पाटों से पीसे जाओगे और चिल्लाओगे हमारी बात न मानोगे तो पछताओगे, जन्म मरण के धक्के खाओगे और पुनः नष्ट-भ्रष्ट हो जाओगे।

मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्यु माप्नोति य इह नानेवपश्यति ॥

यह आत्मा ब्रह्म शुद्ध मन से देखने योग्य है इसमें भिन्न भाव कुछ नहीं। जो इससे भिन्न भाव देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को बार-बार प्राप्त होता है।

एकधैवानुदृष्टव्यमेतदप्रमेये ध्रुवम् ।
विरजः परः आकाशादजः आत्मा महाध्रुवः ॥

जो ब्रह्म विरज अर्थात् शुद्ध और अव्याकृत आकाश से परे अजन्मा और कूटस्थ अविनाशी है वह एक मात्र अद्वैत से ही दृष्टव्य है अन्यथा नहीं।

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।
नानुध्यायाद्बाहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तदिति ॥

धीर ब्राह्मण को चाहिये कि उसी को जान कर अपना आपा निश्चित करे अर्थात् दानाई हासिल करे और बहुत शब्दों का अध्ययन न करे क्योंकि ऐसा करना केवल वाणी का विग्लापन अर्थात् श्रम है।

"स वा एष महान् आत्मा योयं विज्ञानमयः प्राणेषु यः एषोन्तरः हृदयाकाशः तस्मिन्शेते।"

निश्चय करके जो यह विज्ञानमय आत्मा परमात्मा हृदयाकाश में प्राणों को ओढ़ कर शयन कर रहा है।

"सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपति स न साधुना कर्मणा भूयान् एवासाधुना कर्मायानेष सर्वेश्वरः

एष भूताधिपतिरेष भूतपालः एष सेतुर्विधरण तेषां लोकानां सम्भेदाय।"

यह सब का नियन्ता और वही सब को वश में रखने वाला है। वही सब का अधिपति है। वह किसी प्रकार के पुण्य पाप से लिपायमान् नहीं होता। वही लोकों को मर्यादा में रखने वाला सेतु रूप है। वही सर्वेश्वर है, भूतों का पति है, और चराचर जगत् का पालक है।

"तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विदिशन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन एनमेवं विदित्वा मुनिर्भवति एनमेव प्रव्राजिनो लोक मिच्छन्त प्रव्रजन्ति। एतद्वसंसैतत् पूर्वे विद्वांस प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो एषां नोयमात्मानं लोक इति। ते पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।"

ब्राह्मण लोग वेदाभ्यास, यज्ञ, दान तथा तपादि कर्मों से उसके जानने की इच्छा करते हैं। क्योंकि उसी को जान कर पुरुष मुनि होता है। उसी को जानने के लिए पुरुष संन्यास लेते हैं। यह प्रसिद्ध है कि पूर्वले विद्वान् लोग प्रजा की कामना न करते हुए यह कहते थे कि यदि आत्मा की अथवा परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई तो हम प्रजा से क्या करेंगे। यह विचार कर पुत्रों की इच्छा, धन की इच्छा तथा लोक में मान-प्रतिष्ठा की

इच्छाओं को परित्याग कर संन्यासी भिक्षाटन करते थे। यदि विचार से देखा जाय तो विदित होता है कि जो पुत्रैषणा है वही वित्तैषणा है और जो वित्तैषणा है वही लोकैषणा है। इस प्रकार यह दोनों ही एषणा बनती हैं जिससे यति लोग पार हो कर केवल परमात्मा के अर्थात् अपने परमानन्द में मग्न रहते हैं।

हे राजा जनक! यह आत्मा कर्मेन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जाता क्षीण न होने वाला अर्थात् उपचयापचय से रहित, असंग, बन्धन रहित आनन्द स्वरूप है। कभी नाश नहीं होता इसीके साक्षात्कार से यति लोग शुक्ल तथा कृष्ण दोनों प्रकार के कर्मों से पार हो जाते हैं फिर उन के चित्त में किसी प्रकार का ताप नहीं रहता। वह किसी प्रकार के पाप से लिपायमान् नहीं होता। आत्मवेत्ता शम दम उपरति तितिक्षा तथा समाधानादि साधनों से युक्त होकर अपने आप में परमात्मा को और अपने आत्मा परमात्मा में सब को देखता है।

"नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजो विचिकित्सो ब्राह्मणो भवति एष ब्रह्मलोकः।"

उसको पाप स्पर्श नहीं करते। वह सब प्रकार के पाप से पार हो जाता है। उसको पाप नहीं तपाता प्रत्युत वह पापों को भस्म कर देता है। इस प्रकार वह पाप से रहित निष्काम हुवा शान्त हो जाता है। फिर कोई संशय नहीं रहता। हे राजन! यह सर्वात्म भाव ही ब्रह्म लोक है जिसको तू प्राप्त हो

गया है। यह याज्ञवल्क्य ने राजा जनक को अनुभव कथन किया। तदन्तर महाराज जनक बोले कि हे भगवन्! मैं आपके लिए विदेह देश और अपने आपको भेट करता हूँ।

निश्चय करके यह महानजात्मा सब का संहार करने वाला तथा सब का फल देने वाला है जो इस प्रकार जानता है यह सब प्रकार की वसु कामनाओं को प्राप्त होता है।

'स वा एष महानजात्मा अजरः अमरः अमृतः अभयः वै अभयं ब्रह्म यः एवं वेद अभयं ह वै ब्रह्म भवति।'

निश्चय करके यह महानजात्मा जरा रहित अविनाशी मृत्यु रहित तथा अभय रूप है निश्चय करके ब्रह्म अभय रूप है। जो इस प्रकार निश्चय से जानता है कि ब्रह्म अभय रूप है वह निश्चय करके अभय ब्रह्म हो जाता है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति॥

ऋग्वेदादि वाणी मन के सहित जिसको प्रत्यक्ष निरूपण नहीं कर सकते हैं उस ब्रह्म के आनन्द का जानने वाला जन्म मरण भयादि से सभी नहीं डरता।

'एतं ह वाव न तपति किमहं साधुना करवं किमहं पापकरवमिति स यः एवं विद्वानेते आत्मानं स्पृणुते उभे ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते य एवं वेद इत्युपनिषद्।'

यह वार्ता सत्य है कि शोक है मैंने सत् कर्म कभी नहीं किया और हा शोक है कि मैंने पाप कर्मों को किया; इस प्रकार ऐसे पश्चात्ताप को जो जानने वाला है वह पाप-पुण्य दोनों को परमात्मा रूप देखता है। क्योंकि वह विद्वान् इन दोनों को अर्थात् पुण्य-पाप कर्मों को आत्मारूप ही देखता है जो इस प्रकार अखण्ड अद्वैत ब्रह्म को जानता है वह स्वयं पाप-पुण्य मृत्यु रहित अखण्डानन्द पूर्ण ब्रह्म हो जाता है।

अहं वृक्षस्य रेरीवा कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव।
ऊर्ध्वं पवित्रो वाजिनी इव स्व मतमस्मि॥

मैं संसार रूपी वृक्ष का प्रेरक और अन्तर्यामी हूँ। मेरा यश पर्वत के शिखर समान ऊँचा है और जैसे सूर्य विषय शुद्ध अमृत है तैसे ही मैं निर्मल ब्रह्म ज्ञान स्वरूप हूँ। और प्रकाशमान् ब्रह्मरूपी द्रव्य मुझ करके पाया गया है। मैं कार्य कारणात्मक जगत् का आदि मध्यान्त जानने वाला हूँ। इसी कारण मैं अमृत से सिञ्चित किया हुवा हूँ। इस प्रकार त्रिशंकु मुनि का आत्मानुभव के पश्चात् यह वाक्य है।

"तदुक्त मृषिणानुमन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वाशतं मा पुर प्रयासि ररक्षन्नधः शयनो जवसा निरदीयमिति गर्भ एवं तच्छयानो वामदेव एवमुवाच।"

गर्भ में ही स्थित वामदेव इस प्रकार बोले कि निश्चय करके मैं इन अग्न्यादि देवों के सम्पूर्ण जन्मों को जानता हूँ।

मुझ को सैंकड़ों लोह निर्मित शृंखला के समान बने हुए शरीर परमात्मज्ञान से प्रथम रक्षा करते थे, परन्तु अब मैं बाज के समान जाल को भेदन करके परमात्मज्ञान रूप सामर्थ्य से इस गर्भ में ही सोया हुवा निकल आया हूँ।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विमः।
अहं कुत्स मार्जुनेयन्मृञ्जेहं कवि रुशना पश्यता मा॥
अहं भूमिमददामार्या याहं वृष्टि दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं नावशाना माम देवासो अनुकेत मायन्॥

मैं ही मनु हुवा, मैं ही सूर्य हुवा, मैं ही कक्षीवान् ऋषि, मैं ही विप्र, कवि, भूमि के धारण करने वाला हुवा। तात्पर्य यह है कि सब मैं ही हूँ। पुनः वृहदारण्यक में लिखा है।

"यदाहुर्यद्ब्रह्म विद्याया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्याः मन्यन्ते तत् ब्रह्मावेद्य तत्सर्वमभवदिति। ब्रह्म वा इदमग्रासीत् तदात्मानमेवा वेद अहं ब्रह्मास्मीति। तस्मात् तत्सर्वमभवत्। तद्यो यो देवानां प्रति बुद्धचतं स एव तदभवत् तथा ऋषिणां तथा मनुष्याणां।"

मनुष्य जिस ब्रह्म विद्या द्वारा सब कुछ हो जाता है वह कथन करते हैं और किस प्रकार संकल्प करके सर्व रूप हो जाता है वह कथन करते हैं। मैं ब्रह्म हूँ इसी कारण से वह सब हो गया। वह जो जो देवताओं में से जागा, अविद्या दूर हुई

और उस ने जाना कि मैं ब्रह्म हूँ वह ब्रह्म हो गया। इसी प्रकार ऋषियों में से जिस ने यह जाना कि मैं ब्रह्म हूँ वह ब्रह्म हो गया। यह प्रसिद्ध है कि वामदेव ऋषि ने जब देखा और कहा कि मैं ही मनु और मैं ही सूर्य हुआ अब भी जो इस प्रकार समझता है कि मैं ब्रह्म हूँ वह वही हो जाता है। ऐसे पुरुष का ऐश्वर्य दूर करने में देवता भी समर्थ नहीं होते। क्योंकि वह इन देवताओं का आत्मा हो हो जाता है।

"अथ योऽन्याम् देवतामुपासतेन्योसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्।"

और जो अन्य देवताओं को उपासना करता है कि देवता और हैं और मैं और हूँ और यह जानता है कि सब देवता मैं ही हूँ वह देवताओं का पशु है। जैसे बहुत पशु दोहन वाहनादि से एक मनुष्य का पालन करते हैं इसी प्रकार बहु पशु स्थानीय एक एक अज्ञानी पुरुष विषय भोग द्वारा इन्द्रियों का पोषण करते हैं। यदि किसी का एक पशु ले लिया जाय तो उसको अप्रिय होता है तब क्या बहुत पशु लेने पर उसको अप्रिय नहीं होता वरञ्च अधिक होता है। इस लिये अज्ञानी पुरुष के इन्द्रिय और मन को यह प्रिय नहीं लगेगा कि मैं, ब्रह्म और सम्पूर्ण देवता एक ही हैं। परन्तु विवेकी पुरुष को अद्वैतात्मा सब से प्रिय है।

"तदेतत्प्रिय पुत्रात्प्रियो वित्तात्प्रियो न्यस्मात्सर्वस्माद-न्तरतरं यदयमात्मा।"

वह यह आत्मा पुत्र, धन तथा अन्य सब पदार्थों से प्रियतम है। अतः जो इस आत्मा से अन्य पुत्रादिकों को प्रिय मानता है उसके प्रति ब्रह्मज्ञानी का यह कथन कि उसको यह कहे—

"ब्रूयात्प्रियं रोत्स्यतीति ईश्वरो ह तथैवस्यादात्मानमेव प्रिय मुपासीत्।"

यदि आत्मा से भिन्न और पदार्थों को ही प्रिय समझता है तो निश्चय अज्ञानी है। वह अपने प्यारे सुख को रोवेगा। यह ईश्वर है इस प्रकार पुत्रादिकों में प्रियता का अभिमान छोड़ कर परमानन्द स्वरूप आत्मा की उपासना करे। जो आत्मा को प्रिय जानता हुवा उपासना करता है उसके लिये कोई अनात्म पदार्थ दुखदाई नहीं होता। राजा जनक का अनुभव महाभारत में इस प्रकार वर्णन किया है।

नाहमात्मार्थं मिच्छामि गन्धान् घ्राणगतानपि।
तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥

अब मैं आत्मा के लिये अपने लिये घ्राणगत गन्धों की वाञ्छा नहीं करता इसी कारण से सम्पूर्ण गन्ध और भूमि मेरे वश में रहती है।

नाहमात्मार्थमिच्छामि रसानास्येपि वर्तत।
आपो मे निर्जिता तस्मात् वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥

मैं अपने लिये रसनागत रसों को नहीं चाहता इसी

कारण सब जल मेरे वश में रहते हैं।

नाहमात्मार्थमिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुषा।
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥

मैं आत्मा के लिये चक्षुगत रूप ज्योति को नहीं चाहता इसी से अग्नि और सम्पूर्ण रूप मेरे वश में हो गये।

नाहमात्मार्थमिच्छामि स्पर्शान् त्वचि गताश्चये।
तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥

जब मैंने अपने लिये त्वचागत स्पर्शों को छोड़ दिया इसी कारण सम्पूर्ण वायु और वायु के झोंके मेरे वश में हो गये।

नाहमात्मार्थमिच्छामि शब्दान् श्रोत्र गतानपि।
तस्मान्मे निर्जिता शब्दा वशे निष्ठन्ति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थमिच्छामि मनो नित्यं मनोन्तरे।
मनो मे निर्जितं तस्माद्वशे तिष्ठति नित्यदा॥

अपने लिये मैं शब्दों की इच्छा नहीं करता इसी कारण से सम्पूर्ण शब्द मेरे वश में रहते हैं। इसलिए मैं अपने आपको मन और संकल्प के लिये नहीं चाहता इसी से मन और संकल्प मेरे वश में हो गये हैं। ऋग्वेद में भी एक स्त्री वाक्य इस प्रकार उद्धृत है:—

अहंरुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अहमादित्यैरुत विश्व देवैः।
अहं मित्रा वरुणो भा विभर्मि अहमिन्द्राग्नि महमश्विनो भा॥

मैं इन्द्रों के साथ, वसुओं के साथ विचरती हूँ, आदित्य और सम्पूर्ण देवों के साथ विचरती हूँ। मित्र और वरुण को मैं ही धारण किये हुए हूँ। मैं ही इन्द्र, अग्नि और अश्विनियों को प्रकाशती हूं इत्यादि और भी बहुत कुछ है। अथर्व वेद में भी कहा है—

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा ऊ।
अहं जनाय शमदमकृणोम्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश॥

मैं दुष्टों को दण्ड देती हूँ, मैं ही मनुष्यों के लिए संग्राम भूमि रचती हूँ, मैं ही द्यौ और पृथिवी में प्रविष्ट हूँ।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणान्तर्हितं हवि॥

ब्रह्म ही हवन करने वाला, वह ही यज्ञ, वह ही उद्गाता तथा अध्वर्यु है। अध्वर्यु ब्रह्म से उत्पन्न हुवा है और ब्रह्म में ही हवि पड़ता है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि र्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना॥

ब्रह्म ही अर्पण, ब्रह्म ही हवि, ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म से ही हवन किया जाता है और वही हवन का फल है। ब्रह्म में ही अभेद दृष्टि से समाहित मन वाले पुरुषों का सम्पूर्ण कर्म होता है।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिण-

तश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं प्रसृतं ब्रह्मै वेदं विश्व मिदं वरिष्ठम् ॥

यह अमृतरूप ब्रह्म ही है। आदि में ब्रह्म और अन्त में ब्रह्म अर्थात् आगे भी ब्रह्म और पीछे भी ब्रह्म, दायें भी ब्रह्म और बायें भी ब्रह्म, नीचे और ऊपर भी यह ब्रह्म ही फैला हुवा है। यह सम्पूर्ण अति श्रेष्ठ ब्रह्म ही है जो ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय त्रिपुटी है।

यः एषोन्तरादित्ये हिरण्यमय पुरुषो दृश्यते हिरण्य समश्रु। हिरण्य केशः आपन्नखात सर्व एव सुवर्णम् ॥

जो यह आदित्य के मध्य में ज्योतिर्मय पुरुष दीखता है जिसके ज्योतिर्मय बाल, दाढ़ी मूंछ, नख, शिख हैं अर्थात् सब शोभन वर्ण वाले हैं। जैसे लाल कमल होता है इसी प्रकार उस हिरण्यमय पुरुष के नेत्र हैं। उसका "उत्" यह नाम है। यह सब पापों से पृथक् होकर उदय होता है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहं ओं खं ब्रह्म ॥

ज्योतिर्मय मण्डल से सत्य का मुख ढका हुवा है और जो आदित्य में पुरुष है वह मैं हूँ। ओं रक्षा करने वाला सर्व व्यापक सब से बड़ा है।

शाण्डिल्य ऋषि का अनुभव इस प्रकार है:—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत्

अथ खलु ऋतुमय पुरुषो यथा ऋतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेतत्प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ।

निश्चय करके यह सब ब्रह्म है उसके उत्पत्ति स्थिति तथा इसी में लय होते हैं। उसको शान्त होकर उपासना करे। निश्चय करके यह पुरुष संकल्पों का बना हुवा है। जैसे कर्म इस लोक में करता है यह वैसा ही होता है। इसी प्रकार मर करके कर्म करता है और इसी प्रकार भोगता है। यह आत्मा मनोमय, ज्ञान स्वरूप ब्रह्माण्ड रूप शरीर वाला, सत्य संकल्प, आकाशवत् परिपूर्ण, सर्व शक्तिमान्, पर्याप्तकाल, सर्वगन्ध, सर्व रस, सब जगत् में व्यापक, अवाकी अर्थात् वाणी से रहित और पक्षपात शून्य है। यह आत्मा मेरे हृदय में अति सूक्ष्म है। धानों और यवों तथा सरसों और चावलादि से भी सूक्ष्म है। और यह मेरा आत्मा हृदय के मध्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ और सब लोकों से बड़ा है।

"एष मे आत्माऽन्तर्हृदय एदद् ब्रह्म, एतमितः प्रेत्याभि सम्भवितास्मीति ।"

यह आत्मा परमात्मा मेरे हृदय के बीच है। यही ब्रह्म है। इसको यहां से मर कर प्राप्त होऊँ। ऐसा जिसका विश्वास हो और कोई सन्देह न हो वह इस को अवश्य प्राप्त होता है। यह शाण्डिल्य ऋषि का अनुभव है।

किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ।

आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा ॥
स वाह्याभ्यान्तरे देहे ह्यध ऊर्ध्वं च दिक्षु च ।
इत आत्मा तथे ह्यात्मा नास्त्यनात्म मयं जगत् ॥
न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मयि ।
किमन्यदभि वाञ्छामि सर्वं संविन्मयं ततम् ॥
स्फार ब्रह्मा मलाम्भेधि फेनाः सर्वे कुला चलाः ।
चिदादित्य महातेजा मृग तृष्णा जगच्छियः ॥

कहां जाऊँ किसे छोड़ूँ किसे लेलूं करूँ क्या मैं ।
मैं इक तूफान कयामत का हूँ पुर हैरत तमाशा मैं ॥
नहीं कुछ जो नहीं मैं हूँ इधर हूँ मैं उधर मैं हूं ।
मैं चाहूँ क्या किसे ढूंढूँ सभी मैं ताना बाना मैं ॥
मैं बातिन मैं अयां ज़ेरो जबर चपरास्त पेशो पस ।
जहां मैं हर मकां मैं हर जबां हूँगा सदा था मैं ॥

और भी कहा है—

अपने मजे की खातिर गुल छोड़ ही दिये जब ।
रुए जमीं के गुलशन मेरे हो बन गये सब ॥
जितने ज़बां के रस थे कुल तर्क कर दिये जब ।
बस जायके जहां के मेरे ही बन गये सब ॥
खुद के लिये जो मुझ से दीदों की दीद छूटी ।
खुद हुस्न के तमाशे मेरे ही बन गये सब ॥
अपने लिये जो छोड़ी ख्वाहिश हवा खुरी की ।

वादे सबा के झोंके मेरे ही बन गये सब ॥
निज की ग़रज़ से छोड़ा सुनने की आरज़ू को।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गये सब ।
फिक्र ओ ख्याले रंगी मेरे ही बन गये सब।
आहा अजब तमाशा मेरा नहीं है कुछ भी ॥
दावा नहीं ज़रा भी इस जिस्म ओ इस्म पर ही ।
ये दस्त ओ पां हैं सब के आंखें यह तो सब की ॥
दुनियां के जिस्म लेकिन मेरे ही बन गये सब।

इन्द्र राजा के आनन्द का समुद्र यों गर्जता है:—

इति वा इति मे मनो गामश्वं सुनुयामिति ।
कुवित्सो मस्या पामिति ॥ ऋ० अष्ट० ८ अ० ६ व ३०

इत्यादि मंत्रों पर स्वामी राम यथा:—

पीता हूँ नूर हर दम जाम-इ-सरूर पै हम।
है आस्मां प्याला वह शराब-हू-नूर वाला ॥
जो जी में अपने आता हूँ जो है जिसको भाता।
हाथो गुलाम घोड़े ज़ेवर ज़मीन जोड़े ॥
ले जो है जिसको भाता माँगे बगैर दाता।
हर क़ौम की दुवाएँ हर मत की इल्तज़ाएं ॥
आती है पास मेरे क्या देर क्या सवेरे।
जैसे अड़ाती गायें जंगल से घर को आयें ॥
सब ख्वाहिशें नमाजे गुण कर्म और मुरादें ॥

हाथों में हूं फिराता मेमार जैसे ईंटें।
हाथों में हूँ घुमाता दुनियां हूँ यूँ बनाता।
दुनियां के सब बखेड़े झगड़े फिसाद वे झेड़े।
दिल में नहीं रड़कते न निगाह को बदल सकते॥
गायो गुलाल है यह सुर्मा मिसाल है यह॥
नेचर के लौज़ सारे अहकाम हैं हमारे।
क्या मेहर क्या सितारे है मानते इशारे॥
कशिशे सिकल की कुदरत मेरी है मेहरो उलफत॥
है निगाह-इ-तेज मेरी इक नूर की अन्धेरी।
बिजली सफ़क अंगारे सीने के हैं इशारे॥
मैं खेलता हूँ होली, दुनियां है गेंद गोली॥
ख्वाह इस तरफ फेंकूं ख्वाह उस तरफ चला दूं॥
दिन रात है तरन्नम हूँ शाह-इ-राम के ग़म॥
पीता हूँ नूर हर दम जाम-इ-सरूर पै हम।

पंच नद्यः सरस्वती मपियान्ति स स्रोत सः।
सरस्वती तु पंचधासो देशो भवत् सरित॥

वह देश सर्व प्रकार की विद्या और ज्ञान सहित अर्थात् शोभायमान है जहां सरस्वती के पांच स्रोतें पांच धारा निकल कर अपना जल डालती हैं। पांच स्रोत यह हैं:—

पुस्तक मन्तः करणं गुरु शिष्य तथैव च।
गुण गृहीता ख्याता च पंच स्रोतः सरस्वती॥

पुस्तक अन्तःकरण गुरु शिष्य और मन जो इनके गुणों का गुण ग्राही है। पुनः महर्षियों ने पुस्तकों के भी पांच भाग किये हैं:—

ब्रह्माण्ड पिण्ड नादश्च विन्दुरक्षरमेव च।
पञ्च पुस्तकान्याहु र्योग शास्त्र विशारदाः॥

ब्रह्माण्ड पिण्ड अर्थात् मनुष्य विन्दु नाद और अक्षर योग शास्त्र वेत्ताओं ने यह पांच ही पुस्तक माने हैं:—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मना।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या सर्व मानवाः॥

इसी आर्य देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूलोक के मनुष्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र दस्यु मलेच्छादि सब अपने-अपने योग विद्या चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें। क्योंकि कर्म के मुख्य दो भेद हैं कर्तव्य और चरित; फिर चरित के दो भेद हैं शील और व्रत। पुरुष के आन्तरिक शुद्ध भावों को शील और अन्य पुरुषों से वेदानुकूल भ्रातृभाव से वर्ताव व्रत है। पुनः कर्तव्य कर्म भी दो भागों में विभक्त हैं इष्ट और पूर्त, जल पान के निमित्त कूप बावड़ी तड़ाग प्याऊ सबील आदि अनाथों को अनाथालय धर्मशाला विद्या के लिए विद्यालय छात्र वृत्ति नियत करना इत्यादि शुभ कर्म पूर्त कहाते हैं और इष्ट कर्म पांच भागों में विभक्त हैं, नित्य कर्म पञ्च महायज्ञ सन्ध्या वन्दनादि। नैमित्तिक कर्म गर्भाधानादि, अन्त्येष्टी पर्यन्त सब

संस्कार दक्षिणायन उत्तरायन यज्ञ नव सस्येष्टि कार्तिक और ज्येष्ठ में जब नया अन्न आवे ऋतु यज्ञ प्रायः तिवहारों पर दर्श पोर्ण मास यज्ञ पूर्णिमा अमावस्या को जो किसी निमित्त किया जाय उसको नैमित्तिक कर्म कहते हैं। इसमें ग्रहणादि में दानादि सम्पूर्ण नैमित्तिक कर्म सम्मिलित हैं। काम न करना जो विशेष कामना से किये जायं जैसा कि पुत्रेष्टचादि प्रायश्चित उपवास जपादि निषिद्ध द्वेष मद्य त्यागादि यथा:—

ब्रह्म हत्या सुरा पान मस्तेयं गुरुवङ्गनागमा ॥
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापितैः सह ॥

ब्रह्म हत्या, ब्राह्मण का मारना, सुरापानं, शराब पीना, चोरी करना, गुरु की स्त्री से मैथुन यह चार महापाप हैं। इन चारों के करने वाला महा पापी कहलाता है और जो ऐसे कर्म का करने वाला है उसका साक्षी भी महा पापी है। परन्तु उपनिषदों का यह कथन है कि जो पञ्चाग्नि विद्या के जानने वाला होगा वह मनुष्य साथ से पाप का भागी न होगा और भी पद्म पुराण में कहा है:—

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन प्राप्यते सुखम्।
दानेन हीयते पापं महापातक नाशनम् ॥
मनसा वाचा कर्मणा सर्वावस्थासु सर्वदा।
परपीडां न कुर्वन्ति न ते यान्ति यमालयम् ॥

क्योंकि:—

विद्यमाने धने लोभाद्दान भोग विवर्जिता।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्सोक्षयन् नरकं ब्रजेत्॥

भीष्म जी कहते हैं:—

पात्रा पात्र विवेकोस्ति धेनु पन्नगयो यथा।
तृणात् संजायते क्षीरं क्षीरात्सञ्जायते विषम्॥
अपात्रभ्यस्तु दत्तानि दानानि सु बहूनपि॥
वृथा भवति राजेन्द्र भस्मन्याज्याहुति र्यथा॥
पात्रे दानं स्वल्पमपि काले दत्तं युधिष्ठिर।
मनसाहि विशुद्धेन प्रेत्यानन्त फलं स्मृतम्॥

मनुष्य को बड़े से बड़ा आनन्द भले कामों के चिन्तन से होता है और परमात्मा केवल उन्हीं से प्यार करता है जो अन्याय से घृणा कर श्रेष्ठ कार्यानुरत रहते हैं। वह मनुष्य जो जीवन से छुट्टी नहीं मानता वह एक ऐसी लम्बी सड़क पर यात्रा कर रहा है जिस पर कोई धर्मशाला, सराय नहीं है। बुद्धिमान् जो कुछ उसके पास है उसके लिये खुश होता है बजाय इसके कि जो उसके पास नहीं है उसके लिये रोता रहे। पड़ोसी का वैसा ही मान करो जैसा कि अपना करते हो। यह स्मरण रहे कि जिससे सब डरते हैं वह सब से डरता है। प्राकृतिक नियमानुसार जीवन व्यतीत करो कुदरत की ओर

जाओ और उसको स्वाधीन बनालो। ज्ञान विचार शूरता संयम और न्याय ये पांच धारने योग्य धर्म हैं इनका सेवन करो। और इन का अनुमोदन यह है कि आत्मा जान सकता है इसलिये प्रत्येक का धर्म है कि ज्ञानशक्ति को बल दिया जाय। आत्मा में काम करने की शक्ति है इसलिये प्रत्येक का धर्म है कि यह शक्ति बुद्धि के वश में रहे और कामनाओं को उसके आधीन रक्खे। आत्मा में कामनायें हैं इसलिये प्रत्येक का धर्म है कि इन्हें बुद्धि के वश में रक्खे और मनुष्य जीवन के सारे अंग मिल जुल कर रहें किन्तु कोई अंग दूसरे के अधिकारों को पांव के नीचे न कुचले। प्रत्येक आप जीये और दूसरों को जीने दे। समूह में भी यह चारों गुण होने चाहियें। एक भाग विचार करे, दूसरा रक्षा और तीसरा काम करे जिस प्रकार शरीर के अंग मिल जुल कर कार्य करते हैं और उनमें तेरे मेरे का झगड़ा नहीं। इसी प्रकार मनुष्य समूह में भी ऊँच नीच का झगड़ा चुका कर सब से उच्चादर्श समूह की भलाई होना चाहिये। प्रत्येक बालक अपने से बड़ों को पिता समान जाने और बड़े छोटे से सन्तान की तरह प्रेम करें। राजा भी जब तक तार्किक और धर्मात्मा नहीं बनता तब तक मनुष्यों के दुःखों का अन्त होना असम्भव है क्योंकि तत्वदर्शी ही पदार्थों को अपने शुद्ध स्वरूप में देखता है। वही सारे काल और सारे अस्तित्व का देखने वाला है, वही अल्प कालिक लाभ का ध्यान न करके धर्म पर आरूढ़ रह सकता है इतर नहीं। भगवान् गीता में कहते हैं:—

ना सतो विद्यते भावो ना भावोविद्यते सतः।
उभयो रपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्व दर्शिभिः ॥

असत् का भाव नहीं होता सत् का अभाव नहीं होता इन दोनों सत् और असत् को तत्वदर्शियों ने देख लिया है जो लोग ऐसे ज्ञान से वञ्चित हैं वह कठिन समय में सीधा खड़े नहीं रह सकते। इसलिये हर एक मनुष्य की पदवी उसकी योग्यता पर निर्भर है। तत्वदर्शी अपने विचारों के अवसरों को बलिदान कर मनुष्यों पर धर्म राज्य स्थापित करें। तत्वदर्शी के यह लक्षण हैं ॥१॥ जो परिवर्तन रहित सत्य को मानता हो ॥२॥ इस सत्य को प्यार करता हो ॥३॥ सत्य भाषण पर आचरण करता हो ॥४॥ इन्द्रियों के सुख को अनुभव भी न करता हुवा आत्मिक आनन्द में मग्न रहता हो ॥५॥ नीच भावों और संकोच से मुक्त और उदार चित्त हो ॥६॥ न्याय पर आचरण करता हो और नम्र स्वभाव हो ॥७॥ अच्छी स्मरण शक्ति रखता हो ॥८॥ स्वाभाविक उसकी वृत्ति सत्य की ओर जाने वाली हो। इस प्रकार के मनुष्यों को तैयार करने के लिये आवश्यक है कि शिक्षा का सन्तोषजनक प्रबन्ध किया जावे। प्रथम धार्मिक कथाओं द्वारा अथवा अपने आचरणों द्वारा गर्भादान से लेकर अष्ट वर्ष पर्यन्त धार्मिक सचाइयों की शिक्षा दी जाय और जो कथायें देवी देवताओं की प्रचलित हैं उनके अनुसार संशोधन कर सदाचार प्रकाश किया जावे तो कोई हानि नहीं वरञ्च लाभ है। क्योंकि सचाई का निर्भर घटनाओं पर नहीं वरञ्च उन

शिक्षाओं पर है जो कहानी से ग्रहण की जा सकती हैं। पश्चात् साथ-साथ प्रश्नोत्तर भी सिखलाया जावे जैसा कि वेद में है:—

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किं स्विदासीत् बृहद्वयः।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिसंगिला॥

हे विद्वानों हम लोग तुम्हारे प्रति पूछते हैं कि कौन स्मरण का प्रथम विषय हुवा है, कौन बड़ा उड़ने हारा पक्षी है, पिलपिली चिकनी वस्तु कौन है तथा कौन प्रकाश रूप को निगल जाने वाली वस्तु है।

द्यौरासीत् पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः।
अविरासीत् पिलिप्पिला रात्रिरासीत् पिसंगिला॥

हे जानने की इच्छा करने वालो प्रथम स्मृति का विषय दिव्य गुण देने हारी वर्षा है। बड़े उड़ने हारे मार्गों को व्याप्त होने वाले पक्षी के तुल्य अग्नि है और वर्षा से पिलपिली चिकनी शोभायमान अन्नादि से रक्षादि उत्तम गुण प्रगट करने वाली पृथ्वी है और प्रकाश रूप को निगलने अर्थात् अन्धकार करने हारी रात है यह तुम जानो। इस प्रकार वेद में प्रश्नोत्तर आते हैं। परस्पर एक दूसरे के लिये सुख वर्धक होना चाहिये और स्वजाति तथा स्वदेश का अनुकरण कर उसे उन्नत करना चाहिये स्वजातीय,तथा स्वदेशीय नियम का उल्लघन करना नहीं वरञ्च उसको पवित्रता से धारण करे जैसा कि इस वचन में कहा है।

'बाहर के पट बन्द कर अन्दर के पट खोल ॥'

अन्तर दृष्टि से विचार कर देखो कि एक काम का करना ही पर्याप्त नहीं परन्तु आवश्यक है कि हम इसे सोच-विचार कर करें और जाने कि क्यों वह काम नेक है। आचार की नींव ज्ञान पर होनी चाहिये क्योंकि आचार तथा ज्ञान का इतना गहरा सम्बन्ध है कि नेकी और ज्ञान एक ही वस्तु है। कोई पुरुष सच्चे अर्थों में नेक काम नहीं कर सकता जब तक उसे उसके वास्तविक तत्त्व का ज्ञान न हो। उसके विपरीत कोई मनुष्य ज्ञान रखता हुवा बुरा काम नहीं कर सकता। यद्यपि मद्यपान काल में भूल जाता कि मद्यपान बुरा कार्य है। सदाचार के जीवन में सब से बड़ा धर्म यह है कि मनुष्य अपने आपको जाने। सच्ची तपस्या इन्द्रिय संयम और दम है। यह तभी सम्भव है कि जब मनुष्य को अपने चरित्र के दुर्बल अंश का ज्ञान हो। हमारे भीतर देवासुर संग्राम हो रहा है असुर प्रत्येक कि अवस्था में विशेष दुर्बल अंश को ढूंढ़ते हैं और उस पर प्रहार करते हैं। एक पुरुष की अवस्था में यह काम अंश है और दूसरे की अवस्था में क्रोध है और तीसरे की अवस्था में कोई और विषय होता है। जो मनुष्य अपने आपको नहीं जानता वह अपने दुर्बल अंश को भी नहीं जानता और इन्द्रियों को वश में करने के अयोग्य है। यदि मनुष्य विषयों पर शासन करता हुवा धर्मानुसार आनन्द प्राप्त कर सकता है तो इसमें दोष नहीं प्रत्युत आनन्द प्राप्ति ही जीवन का आदर्श है। इस आदर्श

जोवन में आत्मा बाह्य दशाओं से सर्वथा स्वतन्त्र होता है। मनुष्य परवश हो अथवा आत्म वश, दरिद्र हो वा धनवान् स्वतन्त्रता उसके हाथ में है। एक पुरुष जिसे संसार परवश समझता है वह राजकीय आत्मा रख सकता है।

इस में मनु जी कहते हैं—

'सर्वं परवशं दुःखं सर्व मात्म वशं सुखम्।
एतद् विद्या समासेन लक्षणं सुख दुःखयोः॥ मनु०

जो जो कर्म दूसरे के आश्रित हैं वह दुःख का कारण हैं और जो अपने वश में हैं यह सुख का कारण होता है यही संक्षेप से सुख दुःख का लक्षण किया है।

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्माहि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरणात्॥
सर्वं ह्यात्मनि संपश्येत् सच्चा सच्च समाहितः।
सर्वं ह्यात्मनि सपश्येन्नाधर्मः कुरुते मनः॥

आत्मा ही सब का देवता और आत्मा ही सम्पूर्ण स्थित है और इनको कर्मयोग से आत्मा ही उत्पन्न करता है। निश्चय करके सब को अपना आपा देखता है वा सब को अपने आपे में समझता है। उस समय उसका मन अधर्म में नहीं जा सकता। यह आत्मा ही सत्य है। उपनिषद् में लिखा है:—

नहि सत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातक परम्।

नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥

सत्य से परे धर्म और झूठ से परे कोई पाप नहीं। न सत्य से परे में कोई ज्ञान है इसलिये पुरुष को चाहिये सत्य को ही धारण करें क्योंकि:—

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्थाः विततो देव यानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्त कामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

सत्य की ही जीत होती है झूठ की किसी काल में नहीं। सत्य से ही देवताओं का मार्ग विस्तृत है (फैला हुवा)। निश्चय करके जिस मार्ग से आप्त काम वाले ऋषि लोग जाते हैं जहां सत्य का उत्कृष्ट स्थान पर ब्रह्म है उसको सत्य कर ही प्राप्त होते हैं इसलिये मनुष्य को चाहिये कि:—

न जातु कामान्नभयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः
नित्यो धर्मः सुख दुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतु रस्यत्वनित्यः

एक एव सुहृद्धर्मो निधने प्यनु याति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्व मन्यद्धि गच्छति ॥

श्री भर्तृहरि कहते हैं:—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समा विशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

परमेश्वर से बार-बार यही प्रार्थना है कि यह प्रथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बाहुल्यता से प्रचलित होनी चाहिये कि मनुष्य इस विषय में स्वतन्त्र वक्तृता कर सके कि आत्मा स्वतन्त्र हो, संसार में परमात्मा का राज्य हो, प्रजातन्त्र पवित्र और एकत्रित होकर निर्बलों को बलवान, निर्धनों को भाग्यवान् तथा सर्व दुःखों का अभाव करते हुए विद्या निधि निमग्न हो कर ईश्वराज्ञा पालन में सब को समान बनाने में प्रयत्न करे। राज्याधिकारी और सर्व साधारण पुरुष सहमत होकर राज-नैतिक कार्यों की अपेक्षा आत्मोन्नति उच्चादर्श समझे और वेद की इस वाणी को शिर और आंखों से स्वीकार कर वर्ताव में लावें यथा:—

ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत् किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

जो कुछ त्रिकोली में गतिशील पदार्थ हैं उन सबको ईश्वर से ढाप दो और उसके त्याग से आत्मानन्द भोगो। किसी के धन की इच्छा मत करो क्योंकि धन किसी का है। एक दूसरे से दूसरे पर आता जाता रहता है। मुख्य इसका स्वामी परमेश्वर ही है और जो इस रहस्य को जानता है सम्पूर्ण त्रिलोकी का धन उसी का जानो इसीलिये श्रुति माता घोषणा देती है:—

वृहच्च तद्दिव्य मचिन्त्य रूपं दूरात्सुदूरे तदि हान्ति के च।
पश्यत् स्विहैव निहितं गुहायां आनन्द रूपं अमृतं यद्विभाति॥

बृहच्च तद्दिव्य मचिन्त्य रूपं सूक्ष्माच्चतत्सूक्ष्म तरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत् स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥
न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैरेवैस्तपसा कर्मणावा ।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्वः ततस्तु पश्यते निष्कलंध्यायमानाः ॥

वह ब्रह्म बड़ा प्रकाश स्वरूप है । उसका स्वरूप चिन्तन नहीं किया जा सकता । वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और दूर से दूर तथा समीप से समीप सबका अपना आपा हुवा-हुवा अत्यन्त ही दीप्तिमान है । दृष्टि से देखने वालों के लिए पंच कोष वा बुद्धि रूपी गुफा में विराजमान् है । उसको कोई पुरुष चक्षु से ग्रहण नही कर सकता न वाणी से ग्रहण किया जा सकता है और न देवता इन्द्रियों से न तप से न कर्म से ही ग्रहण किया जा सकता है किन्तु ज्ञान के प्रसाद अर्थात् महत्व से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा वह ध्यान करने वाला पुरुष उस निरवयव पुरुष को देखता है जो आनन्द स्वरूप अजर अमर नित्य शुद्ध बुद्ध सब को प्रकाश कर रहा है :—

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्था संन्यास योगात् यतयः शुद्ध सत्वा
ते ब्रह्म लोकेषु परान्त काले परा मृता परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

वेदान्त के विज्ञान करके ब्रह्म की एकता अच्छी तरह से निश्चय हो गई है और संशय विपर्यय से रहित यति लोग अर्थात् इन्द्रियों को जीतने वाले संन्यासी ब्रह्म के अभेद द्वारा शुद्ध हो गया है अन्तःकरण जिनका वह सब परान्तकाल अर्थात्

अन्तिम मरण अर्थात् ब्रह्म की अवस्था में प्राप्त होकर सब से छूट जाते हैं जैसा कि :—

जिस मरने से जग डरे मोय बड़ो आनन्द।
कब मरिहूं कब पायहूँ पूरण परमानन्द॥

तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षे अथ सम्पत्स्य।
न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति॥

गता कला पञ्चदशः प्रतिष्ठाः देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्माणि विज्ञान मयश्च आत्मा परे व्यये सर्व एको भवन्ति॥

प्राणादि पञ्च दश कलायें अपने-अपने कारण में लय हो जाती हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियां अपने-अपने देवताओं में लय हो जाती हैं। पुनः इन्द्रियें और विज्ञानमय आत्मा ब्रह्म में लय हो जाते हैं किस प्रकार लय होते है इस विषय में दृष्टान्त कथन करते हैं :—

यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रेस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय।
तथा विद्वान् नाम रूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुष मुपैति दिव्यम्॥

जैसे नदियां समुद्र में प्राप्त हो नाम और रूप को छोड़कर समुद्र रूप ही हो जाती हैं इसी प्रकार विद्वान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष नाम और रूप से विमुक्त हुवा-हुवा परे से परे जो अनन्त शुद्ध ब्रह्म है उस दिव्य स्वरूप पुरुष को अपना आपा पाय लेता है और भी इस विषय के दृष्टान्त कथन करते हैं :—

'स यो हवैतत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्या ब्रह्मवित् कुले भवति। तर्ति शोकं पाप्मानं गुहा ग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥

निश्चय करके जो उस सर्वोपरि ब्रह्म को अपना आपा जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है। इसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला नहीं होता और वह शोक को तर जाता है जैसा कि (तर्तिशोक मात्मवित्) और सर्व पापों को नष्ट कर अन्तःकरण की आविद्यक ग्रन्थियों से मुक्त होकर अमर हो जाता है। जिसमें कभी मृत्यु का प्रवेश न हो उसको अमृत कहते हैं; वह स्वयं अमृत हो जाता है।

सवैया

पूरण ब्रह्म लखा जिन केवल, एक अखण्ड रमा भव सारे।
रूप न रेख अलेख सदा यन, भासत हैं जिनको श्रुति चारे॥
ज्ञान दिनेश चढ़ा जिनके मम, मोह निशा के मिटे सब तारे।
सो गुरु हैं हमरे उर में, जिन पाप महा निधि पार उतारे ॥१॥
जाग्रत में जो प्रपञ्च प्रभासत, सो सब बुद्धि विलास बन्यो है।
जो सुपने में ही भोग्य न भोग, तनु एक चित्र विचित्र जन्यो है॥
लीन सुषुप्ति में मति होत ही, भेद भगे इक रूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जो मनोरथ मात्र सू, निश्चल बुद्धि प्रकाश वन्यो है॥२॥

अस्ति भाति प्रिये रूपं नाम चेत्यंश पञ्चकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥

तिलेषु तैलं दधि नीव सर्पि रापश्च श्रोतः स्वर्णि स्व चाग्निः ।
एव मात्मानात्मनि गृह्यते स उ सत्ये नैनं तपसा योऽनु पश्यति ॥

जैसे तिलों में तेल दधि में मक्खन श्रोतों में जल काष्ठ में अग्नि वैसे ही आत्मा यद्यपि पहले ही है परन्तु बिना अभ्यास के कैसे प्राप्त हो सके परन्तु जब:—

स्वदेह मरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारिणम् ।
ध्यान निर्मथनाभ्यासा देवं पश्येन्निगूढवत् ॥

अपने तीनों प्रकार के शरीरों को लकड़ी वत् करले और ओंकार को ऊपर शरीर रूपी लकड़ी पर घिसने वाली लकड़ी बनावे और बार-बार अभ्यास और ध्यान के द्वारा स्वयं प्रकाश अति सूक्ष्म परमेश्वर का लकड़ियों में से अग्निवत् प्रकाश हो जाता है।

मनुष्य के विचारने योग्य अद्भुत ज्ञान की बात

अपने चारों ओर सृष्टि की रचना की बहुतायत को देखकर स्वाभाविक विचार होता है कि इसको किसने और किस लिये बनाया है। सुनने में आया कि इसको परमात्मा ने जीवों के कर्मानुसार सुख, दुःख भोगने के लिये बनाया है जिससे परमेश्वर के महत्व और कारीगरी, विचित्र रचनायें देखकर परमेश्वर का ज्ञान होवे और जगत् से वैराग्य होवे। जिससे केवल परमात्मा के स्वरूप को जोव चिन्तन करता हुवा परमेश्वर को प्राप्त हो जाय। यही इसका मुख्योद्देश्य है परन्तु हमको नाना प्रकार का दुःख, क्लेश, यन्त्रणायें होती हैं और दीखती हैं। तो यही विचार होता है कि परमेश्वर ने इस जगत् को क्यों बनाया जिसमें जोवों को इतना दुःख होता है, न बनाता तो अच्छा होता क्योंकि जोव भी सुखो रहते और आप भी शान्त मौज में सोता रहता। ऐसे बखेड़े में पड़ना परमात्मा की बुद्धिमानो का काम नहीं है। परन्तु हम इससे डरते हुवे कहते हैं परमात्मा की महिमा, माया, लीला अपार है जिसको वेदादि, ऋषि, मुनि, देवता कोई भी पार नहीं पा सकता है। उसका ज्ञान समुद्र के समान है और हमारो बुद्धि कुल्हवा वत् है। कुल्हवा में सारा समुद्र कैसे भर सकता है ऐसे परमात्मा की रचना और महिमा हम बुद्धि द्वारा कैसे जान सकते हैं।

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

परन्तु हम किन्हीं-किन्हीं शास्त्रों के वचनों से और अपने नित्य के अनुभव से यह निश्चय करते हैं कि बहुतेरे जीवों में विशेषकर मनुष्यों में जन्म से ही दुःखी, दीन, नीच, लंगड़े, लूले, अन्धे, अपाहज, रोगी, मन्द बुद्धिवाले, मलिन, कुरूप इत्यादि दूसरी ओर सुखी समृद्ध, सुडौल, सुन्दर, अच्छी आँखों वाले, सर्वाङ्गों से हृष्टपुष्ट, अच्छी स्मृति, बुद्धि व कुल वाले हैं, राजा हैं, संन्यासी हैं, ब्राह्मण हैं, एक पालकी पर चढ़कर चलता है ये सब विषमतायें कैसे उत्पन्न हुई हैं। यदि कहो कि पूर्व कर्मों के अनुसार जैसे-जैसे जीव ने शुभाशुभ कर्म किये हैं यह उनका फल है। जिन्होंने पुण्य कर्म किये हैं, दूसरे जीवों को सुख दिया है, दान पुण्य किया है वे सुखी हैं और जिन्होंने विपरीत किया है वे दुःखी हैं। आगे भी इसी प्रकार से समझना। तो अब प्रश्न होता है कि यदि मनुष्य को अपने पिछले कर्मों का ज्ञान होता कि मैंने पूर्व जन्म में अमुक पाप किया था उसका यह दुःख रूपी फल मुझे मिल रहा है और अमुक पुण्य कर्म किया था जिस का फल मुझे यह सुख मिला है तो कोई भी पाप कर्म न करता, सब के सब पुण्य रत रहते। जब तक कोई अध्यक्ष अपराध करने वाले के चित्त पर अपराध सिद्ध करने का प्रमाण न दे देवे तब तक उसे दण्ड देने का अधिकार नहीं है। इस लिये परमात्मा हम को शुभाशुभ का ज्ञान कराता और पीछे दण्ड और पुरस्कार देता तो अच्छा होता। एक यवन आचार्य

से पूछा गया कि "यह सृष्टि संग्राम रूपा और सुखी-दुखी किसने बनाई है" उसने कहा "खुदा ताला ने" "उसने किसी को जन्म से सुखी और किसी को दुःखी क्यों बनाया; उसके लिये तो सब पुत्रवत् समान हैं ?" तो उत्तर मिला कि "इसकी कतारें बनाई हुई हैं इनमें दुःखी चलते रहें इनमें सुखी चलते रहें। वह परस्पर दूसरों को देखकर सुखी-दुखी होते रहें। बस यह उसकी मर्जी—कुदरत है आगे हम कुछ नहीं जानते।" परमेश्वर के लिये यह कभी ठीक नहीं हो सकता कि किसी को बिना ही कारण के दुखी-सुखी बनावे। वह तो पक्षपात रहित है, वह करुणावरुणालय है, और अपार दया करने वाला है। ऐसे ही एक बार ईसाइयों के एक बड़े आचार्य से पूछा कि "तुम लोग पूर्वले जन्म ही नहीं मानते तो यह सृष्टि किसने रची है ?" उसने कहा "ईश्वर ने।" अब प्रश्न होता है कि उसने एक को जन्म से ही लंगड़ा, लूला, अन्धा क्यों बनाया ? और दूसरे को सुडोल, सर्वांग सुन्दर सुखी क्यों बनाया ? अपनी मर्जी से बिना पुण्य पाप किये बनाया तो वह ईश्वर समदर्शी, पक्षपात रहित नहीं हो सकता। परमेश्वर सबको दुःखी-सुखी बनाता तो सब वेदों में और शास्त्रों में और महात्माओं ने एक स्वर से यह कहा है कि परोपकार करो, दुखियों के दुख दूर करो, अन्धों को आंखें दो, रोगियों के रोग दूर करो, कंगालों को धन दो और भूखों को भोजन। जो राजा किसी अपराधी को कारागार में डाल दे जैसे उसके मुक्त करने वाले को दण्ड मिलता है

इसी प्रकार से यह सुखी-दुखी परमेश्वर ने बनाये होते तो इनके विरुद्ध कर्म करने वालों को परमेश्वर दण्ड देता पर ऐसा नहीं है। इसके विपरीत उनको स्वर्गधाम और मोक्ष की प्राप्ति कराता है। इससे सिद्ध है कि दुःखी-सुखी जो सन्तान उत्पन्न होती है वह माता-पिता के कर्म से होती है। वेद में कहा है कि माता-पिता गर्भाधान से पूर्व अमुक-अमुक कर्म और भोजन करें और पीछे संकल्प करें कि हम एक शूरवीर और भक्त सन्तान को उत्पन्न करें। रामचन्द्र जी को माता जब वह गर्भ में थे तो अग्निहोत्र करती थी और पश्चात् परमेश्वर से प्रार्थना करती थी "कि हे परमेश्वर! हमारे गर्भ से स्वयं अवतार लो और भारत-वर्ष को और सब दीन, दुःखियों को सुख दो और अत्याचारियों से मुक्त करो। सुख और शान्ति प्रेम, भक्ति सबके साथ में समान बर्ताव करो।" अभिप्राय यह है कि उनके माता-पिता के संकल्पों का ही फल था जिससे रामावतार हुवे। ऐसे ही देवकी और वसुदेव चाहते रहते थे कि हमारे गर्भ से भगवान् अवतार लें और सारे ससार के लिये मुक्ति का द्वार खोल दें। ठीक वैसा ही हुवा। उनका उपदेश गीता में सबके लिये समान है। एक ऋषि जब उनकी पत्नी के गर्भ रहा तबसे वह उनको देव वाणी, वेद के मन्त्र और शास्त्रार्थ करने की कथा सुनाया करते थे। तो उनके जो पुत्र थे वह गर्भ में स्थित ही अपने पिता के उच्चा-रण की अशुद्धि बतलाने लग गये। उन्होंने क्रोध करके लात मारी जिससे लड़का आठ जगह से टेढ़ा पैदा हुवा। उसका

नाम अष्टावक्र था। वह बड़ा महात्मा, पण्डित और ज्ञानी हुवा है। एक समय वह राजा जनक की सभा में गया। उसको ऐसा कुरूप और टेढ़ा-मेढ़ा देखकर जनक सहित पण्डितों की सारी सभा हँस पड़ी। उनको देखकर आप भी बड़े खिल-खिला कर हँसे। उनको हंसता हुवा देखकर राजा जनक व पण्डितों को बड़ा आश्चर्य हुवा और हँसने का कारण पूछा। अष्टावक्र ने कहा कि मैंने सुना था जनक और उसके सभासद् विद्वानों की परीक्षा करते हैं और बड़े ज्ञानवान् हैं परन्तु यहां तो मैंने देखा कि कसाई और चमार हैं। क्योंकि कसाई हड्डियों की परीक्षा करता है और चमार चमड़े की। यह सुनकर सब बड़े लज्जित हुवे, उनको प्रणाम किया और उत्तम आसन दिया। यह सब आदर पिता के उस कर्म का फल है जो यह ज्ञान की कथा सुनाया करते थे। और उनको देखकर हँसना आदि निरादर पिता के पदाघात रूपी कर्म का फल है। वह ऐसा ज्ञानवान् और कुरूप न तो भगवान् ने ही बनाया और न उसके पहले जन्मों के कर्मों का ही फल था। ऐसे ही माता के कर्मों का फल सन्तान को और सन्तान के कर्मों का फल माता-पिता को भोगना पड़ता है। उपनिषदों में कहा है कि मनुष्य चाहे जैसी सन्तान पैदा कर सकता है। लिखा है कि बहुत पण्डित और अच्छा पुत्र उत्पन्न करना हो तो क्षीर और चावल घी मिला कर खाय तो ऐसा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ होवें। ऐतरेय उपनिषद् में लिखा है पिता जो अन्न और जल

आदि का आहार करता है उससे वीर्य उत्पन्न होता है। जीव का वीर्य रूप से पिता के शरीर में स्थित होना प्रथम जन्म है। जब वह गर्भाधान द्वारा स्त्री के शरीर में अंगभूत हो करके स्थिति करता है वह जीव का दूसरा जन्म है। गर्भ से उसका जो बाहर आना है वह तीसरा जन्म कहाता है। यह मरण में जीव को दुःख का कथन है वह वैराग्य के वास्ते है। पिता से सन्तान की आकृति आती है। अब भी सूक्ष्मवीक्षण के द्वारा वीर्य को देखा गया है तो पुरुष के शरीर की सारी शकल विद्यमान थी। जब वह स्त्री के गर्भ में होता है तो स्त्री के खाने-पीने का जो रस बनता है उससे और जो उसका खून ठहरता है उससे उसका शरीर बनता है। कई पुश्तों तक आदमी पहचाना जाता है कि यह अमुक का पुत्र, पौत्र व प्रपुत्र है। किसी की शकल-सूरत उसकी माता पर और किसी की निगाह और ध्यान से और पर भी जाती है। गर्भवती एक गोरी स्त्री के कमरे में एक हब्शी की तस्वीर थी जिसे वह बार-बार देखती और चिन्तन करती रहती थी। जब उसके बालक जन्मा तो वह हब्शी के रूप का था। उसको देखकर अंग्रेजों ने बड़ा आश्चर्य किया और हिन्दुओं में निगाह और चिन्तन करने से शकल-सूरत बदल जाती है इस उसूल को सच जाना। ऐसे ही उग्रसैन की रानी की राक्षस पर निगाह पड़ने से कंस हुआ। इस वास्ते गर्भावस्था में स्त्री की बड़ी रक्षा करनी चाहिये। वह अपने पति की

मूर्ति का ध्यान करे, देखे, या अपनी तस्वीर को दर्पण में देखे, राम कृष्णादि अवतारों की, देवताओं की, ऋषिमुनि महात्माओं की मूर्तियों का ध्यान करे। उनके जीवन चरित्रों की कथा सुने। क्षोर, चावल, दूध, फल, ब्रह्मी, वंशलोचन, ज्योतिष मति, गिलोय, गाय का घी और शहद इत्यादि का सेवन करे। कभी किसी प्रकार का शोक, क्रोध और दुःख पति को चाहिये उसे न होने दे। खोटी नीच स्त्री से बातचीत नहीं करने दे। एकान्त अच्छे स्थान में रक्खे। बनों में, जंगलों में, बागों में, फूलों में, साधु महात्माओं के दर्शनों को उसे ले जाय और उसकी जो इच्छा हो उसे पूरी करे। कर्ज लेना बुरा है परन्तु गर्भावस्था में कर्ज लेकर भी अच्छी वस्तु खिलावे और अच्छे मकान में रक्खे तो लड़का अवश्य ज्ञानवान्, धैर्यवान्, और पराक्रमी हो। गर्भ के अन्दर जब अभिमन्यु था तो कृष्ण भगवान् ने उसकी माता को चक्र व्यूह तोड़ने की कथा सुनाई थी। वह अभिमन्यु को सोलह वर्ष की आयु में ज्यों की त्यों याद रही। ऐसे ही आल्हा, उदल व बोनापार्ट जब यह अपनी माताओं के गर्भ में थे उस समय इनकी मातायें लड़ाइयों में सिपाहियों को पानी पिलाती थीं। और युद्ध का दृश्य देखती थीं और सुनती थीं। इनके लड़कों ने पैदा होकर जब से सुरत संभारी तब से मरण पर्यन्त लड़ते ही रहे। गर्भ के समय माता जो कुछ खायगी, देखेगी, सुनेगी और खयाल करेगी वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। इसलिये माता-पिता

को चाहिये कि वह सन्तान के लिये अच्छा काम करे जिससे वे सुख पावें। सन्तान के सुख-दुःख और पाप-पुण्य का उत्तरदायी माता-पिता हैं। परमात्मा किसी को दुःखी, दीन, कंगाल, अंगहीन, पराधीन नहीं बनाता है। वह तो इनसे छूटने और छुटाने का उपदेश करता है, इन सब से असंग है। और जो यह कहा जाता है कि "हारे के हरि नाम" जब चन्देरी का राजा शिशुपाल कृष्ण से लड़ाई में हार गया उस दुःख से दुःखी होकर अग्नि में जलने तो लगा तो उससे मगध के राजा जरासिन्धु ने उसको जलने से रोका और कहा:—

यथा दारुमयि योषिन नृत्यते कुहकेच्छया।

बनोवास में राम ने कहा था:—

नात्मनः काम कारोहि पुरुषोऽयमनीश्वरः।

किसी की अपनी मर्जी नहीं चलती यह पुरुष अनीश्वर है।

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"।

जब मनुष्य का पुरुषार्थ और बुद्धि कोई काम नहीं देते उस समय परमात्मा की शरण में आना पड़ता है और उसी को कर्ता, धर्ता, धाता, विधाता मानना पड़ता है।

करण करावत आपही आप, मानुष के नाहीं कछु हाथ॥

यह भक्ति प्रेम की महिमा है। जैसे नाना प्रकार के जन्मों को धारण करना, जन्म-मरण और गर्भ के दुःखों को

वर्णन करना वैराग्य के वास्ते है ऐसे ही ऐसे शब्द भक्ति की महिमा और सन्तोष के लिये हैं। अब रही पुण्ययोनि और पापयोनि, कंगाल और भागवान्, राजा और रंक, नीच और ऊँच। सो यह भी परमेश्वर ने नहीं बनाये और न बनाता है। यह मनुष्यों की व्यवस्था करने वाली समाज के दोष और गुण से है। ब्राह्मण, भंगी, राजा, रंक यह सब यहाँ की बुरी व्यवस्था के फल हैं। परमेश्वर ने सब को एक जैसा पैदा किया है। इसलिए परमेश्वर तो कल्याण और मोक्ष और जब मनुष्य का कोई साथी नहीं होता है तब उसका साथी और सहायता करने वाला है। वह हमारा सबका एक तरह का आत्मा है। हमारा उसके साथ ऐसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा तरंग, झाग और बुद्बुद् का समुद्र या पानी से। हमें परमात्मा पर पूरा भरोसा और विश्वास रखना चाहिये। जो कोई बात नहीं होती है तो अपने विश्वास की कमी के कारण ही नहीं होती है। एक महात्मा ने कहा है "यदि तुममें राई भर भी विश्वास हो तो तुम्हारी आज्ञा से पर्वत डोलने लग जायं" इसी तरह से यह जो बड़े बड़े महात्मा और भक्त हुवे हैं उनका परमात्मा में अटल विश्वास था। यह निश्चय रखना चाहिये कि जो अपनी मर्जी के विरुद्ध काम हुवा है वह परमात्मा का किया हुवा और अपने बहुत भले के लिये है। परमेश्वर सदैव अपना भला ही करता है।

"यद्विधात्रा विधीयते तच्छुभाय भवति।"

जो परमात्मा करता है वह भले के हो लिये होता है एक राजा के वजीर का ऐसा ही निश्चय था। राजा की एक समय अंगुली कट गई तो सब सभासदों ने शोक और दुःख प्रकट किया कि महाराज को अंगुली कट गई यह बहुत बुरा हुवा। उस वजीर ने कहा कि—"यद्विधात्रा विधीयते तदेव शुभाय भवति।" जो कुछ परमेश्वर करते हैं वह भले ही के लिये होता है। इस शब्द को सुनकर राजा बहुत नाराज हुवा और गुप्त रूप से उसको मारने की ठानी। जब एक दिन वे शिकार को गये तो राजा वज़ीर को लेकर और सब नौकर-चाकरों को छोड़ दूर घने जंगल में चले गये। वहां उनको प्यास लगी। राजा ने वजीर को कूवे से पानी खैंचने की आज्ञा दी। उसने पानी पिलाया जब दुवारा लोटा फांसा तो उसको कूवे में धकेल दिया। राजा वहां से चल दिया, दिन छुप चुका था वह रास्ता भूल गया और वन आदमियों के गांव के पास एक बड़ के पेड़ से घोड़ा बांधकर विश्राम करने की बात सोचने लगा। उसी समय ढोल बजाते हुवे कुछ आदमी आये और राजा को पकड़ लिया। उनको दवता पर बलि चाढ़ने के लिये एक मनुष्य की आवश्यकता थी। जब राजा को बलि पर चढ़ाने लगे तब उनके पुरोहित ने कहा कि इसके कपड़े उतार कर अंग देखो कोई खण्डित तो नहीं है। देखा तो अंगुली कटी हुई थी! तब पुरोहित ने कहा कि खण्डित अंग

भंग की बलि देवता पर नहीं चढ़ती है और वह छोड़ दिया। राजा ने सोचा और विचारा कि उस वजीर का मत बहुत ठीक था। मेरी अंगुली कटी तो जान बची नहीं तो यहां पर बचने का और कोई उपाय न था। तब वह उस कुवे के पास आया और मन्त्री को कूप के बाहर निकाल कर अपने अपराध की क्षमा कराते हुवे कहा कि 'भगवान् जो कुछ करते हैं भले के लिए होता है, यह आपका मत बहुत ठीक था। मेरी अंगुली कटी तो जान बची। पर एक शंका है इसे भी निवारण करो। तुमको कूप में गिराने से तुम्हारा क्या भला हुवा ? वजीर ने कहा श्री महाराज ! हम दोनों साथ में होते तुमको तो अंगुली कटी देख कर छोड़ देते और मुझे बली चढ़ा देते। कूप में गिरने से मेरी भी जान बच गई।

माधव हरि हरि हरि मुख कहिये ॥
हमते कछु न होवे स्वामी, ज्यों राखे त्यों रहिये ॥
राम ज्यों राखे त्यों रहिये ॥
जो कछु करे भलो कर माने, कबहु बुरो ना कहिये ॥

एक राजा नास्तिक था। अपने पुरुषार्थ और बुद्धि पर ही भरोसा रखता था। जब जहाज में बैठ कर कहीं विदेश को जा रहा था तो सहसा रास्ते में तूफान आगया और जहाज डूबने लगा, तब उसे कोई उपाय न दीखा तो घबड़ा कर और बिल-बिलाकर दीनता से प्रार्थना करने लगा कि हे

परमेश्वर ! किसी तरह बचा। वजीर ने राजा का हाथ पकड़ कर कहा आप तो परमेश्वर को नहीं मानते थे। राजा ने कहा कि भाई आखिर मानना ही पड़ता है। इसलिये परमेश्वर को मानना उस पर विश्वास रखना, उनके गुणों का कीर्तन करना, नाम जपना और दूसरे से जपाना यह मनुष्य का सब से बड़ा कर्म है, इससे जीव दुःखों से छूट कर मोक्ष को प्राप्त होता है।

हज़रत साहब ने कहा है परमेश्वर का विश्वास करो पर ऊँट के पांव बांध कर रक्खो।

यत्ने कृतेयदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः।

अतएव भरसक प्रयत्न करना चाहिये जिससे परमात्मा प्राप्त हों। परमेश्वर सुख से, दुःख से, संकल्पों से, बुद्धि से, सब से परे शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, निराकार, ज्योति स्वरूप है। वैसा ही हमें होना चाहिये। लोग कहते हैं परमात्मा पुण्य कर्मों के करने से प्रसन्न होता है और पाप करने से अप्रसन्न होता है। इसको जाने उसको जाने, स्तुति करने से राजी अमुक से नाराजी इत्यादि बातें जीवों को होती हैं, परमात्मा तो इन्हों से रहित है। जीव बड़े से बड़ा सुख और शान्ति का पद चाह सकता है। उससे भी बढ़कर परमात्मा है। उसमें बड़ी से बड़ी प्रेम की किरणें आनन्द और शान्ति की लहरें अपने सुनहरे रूप में और आनन्द और प्यार के रूप में जब जीव को स्पर्श करने लग जाती हैं तो वह कृतकृत्य हो जाता है। मानो उसका मित्र अपने हाथों से अपनी ओर

बुलाता रहता है। बड़े से बड़ा आनन्द, प्रेम, सौन्दर्यता, मिठास, मधुरता, पवित्रता, उत्तमता, सबके सब अपने से बढ़ कर सुख, शान्ति, प्रेम, पवित्रता आदि अपने श्रोत-कारण को दिखाते हैं। परमात्मा प्रेम स्वरूप है, ज्ञान व प्रकाश स्वरूप है, पुण्य स्वरूप है, सुख स्वरूप है।

यद्वि ज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः, आनन्द रूपं अमृतं यद्विभाति।

जो विज्ञान अपने अनुभव से देखता है वह आनन्द अजर अमर, मोक्षरूप जो प्रकाश करता है, जो बाहर भीतर आकाश की भान्ति छाया हुवा है, उसी को पूजो, प्रणाम करो और उसी का लाख-लाख धन्यवाद करो जिसने हमको भक्ति करने का अवसर दिया है।

"प्रिय पुत्रात्प्रिय वित्तात्प्रिय सर्वस्मात्"।

उसको पुत्र से भी बढ़कर प्यार करो धन से स्त्री से सब से बढ़-चढ़ के प्यार अपने आत्मा परमात्मा से करो। उससे किसी प्रकार की भी प्रार्थना करोगे वह अवश्य तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेगा। उसके कभी-कभी देर तो है पर अन्धेर नहीं है। जो सब कुछ परमात्मा ही को मानता है और चाहता है वह वही हो जाता है। सब जगत् उसीसे उत्पन्न हुवा है, उसी में चेष्टा करता है, और अन्त में उसी में लय हो जाता है। इस-लिए यह जो सब कुछ प्रतीत होता है वह परमात्मा ही है। मनुष्य का यदि यह विश्वास हो जाय कि मैं मर कर परमात्मा

को ही प्राप्त हूँगा तो वह प्राप्त हो जाता है और कर्म किसी प्रकार की रुकावट नहीं करते।

'जातेव न जायते कोन्वेनं जनयेत पुनः विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'

जिस मरने से जग डरे, मोय बड़ो आनन्द।
कब मरहूं कब पायहौं, पूरण परमानन्द॥ (कबीर)

इस वास्ते सब मनुष्य को जाति-पाति, छूवाछूत तथा ऊँच-नीच का विचार छोड़ कर एक गायत्री मन्त्र विश्वास व श्रद्धा भक्ति के साथ जपना चाहिए। यह मन्त्र बहुत छोटा सा है परन्तु इसका अर्थ बहुत बड़ा है। यों तो ओंकार के अर्थ में ही ज्ञान और विज्ञान सब आ जाता है; अकार, उकार, मकार और मात्रा में सारे नाम और उनके जपने का फल मिलता है। व्याहृति, गायत्री और ओं इनका उपनिषदों में माहात्म्य और अर्थ स्मृतियों में याज्ञवल्क्यादिकों ने विस्तार-पूर्वक कहा है। कितनी ही गायत्री पर स्वतन्त्र पुस्तकें हैं। गायत्री व्याख्या, गायत्री तन्त्र, गायत्री मीमांसा, गायत्री पटल इत्यादि। हिन्दू जाति में आजकल संगठन की बड़ी आवश्यकता है। जिस जाति का एक मन्त्र नहीं होता है उसका संगठन होना भी असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। पूर्वोक्त कथन के अनुसार सब मनुष्य परमात्मा के लिए एक हैं। इसलिये भगवान् ने कहा है :—

"संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्"।

"समानो मन्त्रः समिति समानि"।

मनुष्य पांच वर्ष के पश्चात् जब से वह सुरत संभालता है मरण पर्यन्त जो जो काम, संकल्प और स्मरण करता है वैसा ही मर करके होता है। जो यहां करता है, सुनता है, वही स्वप्न में देखता है। इस जीवात्मा के पांच शरीर हैं। पहला स्थूल शरीर है जिसमें कि पार्थिव तत्व विशेष है और तत्व गौण रीति से हैं। यह पृथिवी का बुलबुला है। वेद में कहा है:—

"भस्मान्तं शरीरम्"

यह शरीर अन्त में पृथिवी ही में मिल जाता है। इसके सहित चैतन्य को वा आत्मा को विश्व नाम से कहा है। इस का सम्बन्ध वैश्वानर विष्णु विराट से है। इसका स्थूल शरीर यह सारा जगत् है "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे" इनके आत्मा और शरीर की समष्टि व्यष्टि रूप से एकता है। दूसरा सूक्ष्म शरीर है जिसके द्वारा स्वप्न देखता है। उस आत्मा को तैजस कहते हैं। उसका सम्बन्ध ब्रह्म से है। वेद में कहा है :—

"यदिदं मनः स ब्रह्मा"

जो यह मन है वही ब्रह्मा है इसका सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से विस्तृत और शक्तिशाली है। सिद्धि, करामात, विशेष शक्ति स्वल्प-सी इच्छा से सब कुछ सिद्ध कर देता है। इसका रंग रूप उपनिषदों में धूसरी ऊन, हल्दी, इन्द्र गोपा और पटबीजना की चमक के समान है। तीसरा कारण

शरीर है और उसका अभिमानी आत्मा प्राज्ञ है। उसकी एकता ईश्वर के साथ में है। यह तीन प्रकार के चैतन्य आत्मा और उसके शरीर मायिक हैं। इस कारण शरीर में जीवात्मा को दोनों प्रकार का ज्ञान नहीं रहता। न यह संसार है न यह बाहर जो कुछ है वह और न 'मैं हूं, मैं हूं' का ज्ञान रहता है। वह केवल अज्ञान और आनन्द का अनुभव करता है। जाग करके कहता है "मैं बड़े आनन्द से सोया कि मुझे कुछ सुधि न रही" जैसे स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथिवी से बतलाया ऐसे ही सूक्ष्म का वायु के साथ है। वह आकाश का बुलबुला है। चौथे महाकारण का महतत्व से और अव्यक्त का और तुर्य शरीर का ऐसा हो सम्बन्ध है। और पांचवां तुर्यातीत केवल शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। स्थूल शरीर को छोड़ कर जीव सूक्ष्म शरीर को अविद्या से ग्रहण कर लेता है। उसमें स्थूल शरीर से कहीं बढ़-चढ़ कर शक्ति है। जैसे सरकण्डे की गांठ तोड़ने से सूक्ष्म थोर निकलता है और फिर उसमें से तुली निकलती है। ऐसे ही जीव के शरीर रूपी खोल सूक्ष्म से सूक्ष्म, नवतर से नवतर, कल्याणतर से कल्याणतर और पश्चात् तुली रूपी शुद्ध चैतन्य स्वरूप प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य मरता है तब उसके नाड़ी नस सब ढीले पड़ जाते हैं और जसे गूलर पक करके गिर जाता है वैसे ही यह स्थूल शरीर गिर जाता है और सूक्ष्म शरीर को लेकर जीव निकल जाता है। मरने से पहले मनुष्य में मरने के कुछ चिह्न प्रकट भी

हो जाते हैं। बात को भूल जाना, अरुन्धती और ध्रुव का न दीखना, कान मून्द करके जो अनहद बाजे भीतर वैश्वानर अग्नि से बाजते हैं उसके मन्द हो जाने से सुनाई नहीं देते, दीपक में गन्ध नहीं आती, आंख से नाक की फुलक नहीं दीखती, स्वप्न के द्वारा मालूम होना इत्यादि। जब मनुष्य मरता है तो मुमुर्षु की पहले आंखें निठरती हैं, नाभि तक न पहुंच कर श्वास ऊपर ऊपर से आने लगता है और जैसे तृणञ्जलायुका—जोख अपने दो पैरों को आगे जमाकर पिछले पैरों को उठा लेती है, और जैसे मनुष्य चलता हुवा एक पैर को आगे जमाकर पीछे दूसरे पैर को उठाता है इसी प्रकार से जीवात्मा अविद्या से चलाया हुवा सूक्ष्म शरीर पर अपनी शक्ति और स्वत्व जमा कर स्थूल शरीर से अपनी शक्ति को खेंच लेता है और उसके हाथ-पैर ठण्डे हो जाते हैं। हृदय के पास उष्णता आ जाती है तब हृदय का अग्रभाग खुल जाता है और वह आत्मा इस शरीर से निकलता है, आंख द्वारा, कान द्वारा, मूर्द्धा, दसवां द्वार जैसी उसकी उपासना या ख्याल होता है उसके द्वारा निकल कर वायु को प्राप्त होता है। जैसे यहां पृथिवी का स्थूल शरीर भूलोक में रहता है ऐसे वहां भूवर्लोक में वायु का सूक्ष्म शरीर रहता है। उस सूक्ष्म शरीर की आयु स्थूल शरीर से दुगनी होती है। मरते समय जो उन्नति का देवता रहता है वह उसकी उन्नति कर देता है। वह मर करके ब्रह्मा, विष्णु, महादेव या कोई बड़ा देवता

बन जाता है। गन्धर्व, पितर, किन्नर वा और कोई भूत-प्रेत का शरीर धारण कर लेता है।

मनुष्य को आठ प्रकार की सिद्धियें होती हैं। वह देवताओं या भूतों की उपासना से होती है। और उनको (देवताओं या भूतों को) स्वतः सिद्ध होती हैं। मुमुर्षु के निकट आये हुए सम्बन्धियों को चाहिए कि किसी तरह का कोला-हल, शब्द, रोना, धोना आदि न करें। गीता का उपदेश सुनावें कि तू अब परमात्मा के दर्शन करेगा, परमेश्वर को प्राप्त होगा, भगवान् के नाम लेने से तेरे सब पाप नष्ट हो गये, अब तू अन्त समय उसी का ध्यान लगा, ओं का स्मरण कर। "अन्त मति सो गति" अन्त में परमेश्वर का स्मरण कर तू इरादों और संकल्पों का बना हुआ है, जैसा संकल्प करेगा वैसा स्वयं हो जावेगा, तू स्वयं परमात्मा है। तेरे ही संकल्प से वायु आदि बीमारियों में, योग से चित्त भंग होने में, स्वप्न में, मरते समय, अपने खयाल से या सुनने के संस्कार से स्वयं तू वैसा ही बन जाता है। तेरे सिवाय कुछ नहीं। अपने आत्मा को परमात्मा रूप से चिन्तन कर जब रज्जु को सर्प रूप से चिन्तन किया जाता है तो भय कम्पादिक होते है। और जब रज्जु रूप का ज्ञान होता है तब भय कम्पादिक निवृत्त हो जाते हैं। जब आत्मा के अज्ञान से नाम रूपात्मक जगत्, जन्म, मरण, लोक परलोक भासने लगते हैं और जब अधिष्ठान रूप आत्मा का ज्ञान होता है तब सब निवृत्त हो

जाते हैं। पास बैठने वाले सब मनुष्यों को परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए और धीरे-धीरे ओं का जाप। क्योंकि उस समय स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर के सब परमाणु निकल कर दूसरे शरीर का संगठन करते हैं। उस समय शान्त वातावरण होना चाहिए। सब लोग शान्ति से परमेश्वर से प्रार्थना करें कि इसकी सद्गति हो, इसके कर्म इसका पीछा न करें, सब नष्ट हो जायें। मनुष्य को जो अपने लिए चाहता है वह दूसरे के लिए करना चाहिये। इसी मार्ग से चलना और चलाना चाहिए। रोम-रोम से परमात्मा का नाम जपना और चिन्तन करना, पिण्ड को ब्रह्माण्ड के साथ मिला कर परमाणु परमाणु से ओं ओं कहना। सारा जीवन और इसमें जो कुछ कर्म है सब परमात्मा को समर्पण कर देना चाहिए। प्यारी से प्यारी वस्तु परमात्मा के नाम पर दान कर देनी चाहिये जैसे मोरध्वज ने अपना पुत्र, बहुतेरे राजा ग्रहण के समय में अपनी रानियों को और जगदेव ने अपने शिर को, राजा शिवि ने अपने मांस को, राजा दधीचि ने अपनी हड्डियों को और राजा बलि ने अपने सर्वस्व को परमात्मा के नाम पर दान कर दिया था तुम भी वैसा ही करोगे तो संसार से पार हो जाओगे। क्योंकि मनुष्य अब उन्नति करते-करते परमेश्वर को ही प्राप्त होगा, वह मर करके कोड़ा मकोड़ा तो होने का नहीं। जहां कहीं ऐसा कहा गया है वह केवल वैराग्य के लिये है। तुम श्मशान को जाओगे तो वहां महादेव रहते हैं तुम्हारी

भस्म को अपने शरीर से लपेटेंगे, तुम्हारी हड्डियों की माला पहिनेंगे, तब तुम्हारा आत्मा परमात्मा में लय हो जायेगा, फिर जन्म-मरण कहां ? तुम जलों में प्रवाह करे जाओगे तो वहां विष्णु भगवान् रहते हैं उनको प्राप्त होगे। प्यासा पुरुष भी जल की अभिलाषा केवल इसीलिये करता है कि उसमें परमात्मा निवास करते हैं। जंगल में यदि तुम्हारा शरीर डाला जायगा तो वहां नरसिंह भगवान् का निवास है और दत्तात्रेय जी हैं वह तुमको प्रह्लाद की भान्ति प्यार से चाटेंगे और केवल स्वरूप का ज्ञान दत्तात्रेय जी देंगे। ऐसा निश्चय रखने से तुम्हारे दोनों हाथों में लड्डू हैं।

"सर्वाऽहमस्मीति उपासीत तद्व्रतम्"

अब रह गई यह बात कि "पुण्येन पुण्यं लोकं नयति, पापेन पापं उभयभ्यां मनुष्य लोकम्।" कहते हैं कि जब मनुष्य के पाप कर्म अधिक होते हैं और पुण्य कर्म न्यून तो पश्वादि योनि को जीव प्राप्त होता है और पाप न्यून और पुण्य अधिक होने से देव योनियों को पाता है। और पाप पुण्य दोनों बराबर होने पर मनुष्य योनि को प्राप्त होता है परन्तु वास्तव में यह नहीं है। जीव आता है, जाता है, घटि यन्त्र की तरह और तेली के बैल की भान्ति चक्कर लगाता हुवा मनुष्य शरीर को परमात्मा की दया से प्राप्त करता है। यह कर्म योनि है और शेष सब भोग योनि हैं। यदि मनुष्य योनि में जीवात्मा शुभाशुभ कर्म करके देवतादिक और पश्वादिक भोग योनियों

को प्राप्त करे तो वह मनुष्य योनि से कम होनी चाहियें। पर ऐसा नहीं है, एक ग्राम की चींटी और मच्छरों को यदि संख्या करें तो सारी पृथिवी के मनुष्य भी उनके बराबर नहीं हो सकेंगे। प्रश्न—तो हम कैसे माने ?

उत्तर—इस सृष्टि से पहले परमात्मा ही था और अन्त में वही रहेगा। वर्तमान में जो दीखता है वह भी वही है।

"आदावन्ते यन्नास्ति" जो जगत् आदि अन्त में नहीं है यह वर्तमान में भी असत्य है। सत्य केवल परमात्मा है, वही राम है।

"राम नाम सत्य है सत्य बोलो गत्य है"

यह जो मुर्दे के पीछे जाते हुवे कहा करते हो वह जीते जी कहो और समझो।

'सदेव सोम्येदमग्रासीदेकमेवाद्वितीयम्'

हे सौम्य ! सृष्टि से पूर्व एक परमात्मा ही अद्वितीय सत् था। उसने क्यों और किसके लिए सृष्टि उत्पन्न की यह नहीं जानते। परन्तु सृष्टि की उत्पत्ति होना एक गिरावट है। परमात्मा से प्रकृति उत्पन्न हुई, प्रकृति से महतत्व, महतत्व से अहंकार, अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जलों से पृथिवी, पृथिवी से बीज, और उनसे औषधि वनस्पति यहां तक गिरावट हुई, यहां से फिर उन्नति आरम्भ होकर अन्त में परमात्मा में लय होने के लिये उन्नति आरम्भ हुई। पहले वृक्षों के शिर, और गर्भ में बच्चों

का शिर नीचे को होता है और पैर ऊपर को होते हैं और एकेंद्रिय ज्ञान होता है। वृक्षों से पशुओं की योनि उन्नत होती है। उनका शिर सीधा आगे को होता है। और तिर्यग् सर्पादि से गौ अश्वादि की सृष्टि उन्नत है। गौ, सर्प, मच्छी, बन्दर शूकर, हाथी, इत्यादि योनियों से जीव उन्नति करता हुवा मनुष्य शरीर को प्राप्त हुवा। और उन मनुष्यों में विशेषतः ऐसे स्वभाव प्रकृति आई है। बहुतेरे मनुष्य काले सांप और भोटे की भांति क्रोधी होते हैं। वह अपने उपकार करने वाले का प्राण लेने से भी तृप्त नहीं होते। बहुतेरे गौ जैसे शान्त स्वभाव वाले होते हैं। मनुष्य शरीर जब इन योनियों से बने तब गणेश जैसे और-और देवताओं की आकृति वाले बन्दर, मच्छी और वासुकी नाग इनकी थोड़ी प्रकृति इनमें मिलती थी और मनुष्य की प्रकृति इनमें अधिक थी। अब बनते-बनते मनुष्य ठीक बन गया है, सीधा खड़ा हो गया है, अब इसका तीसरा नेत्र खुलेगा और वह इससे ऊपर को देखेगा और सूक्ष्म अवस्था में चला जायगा। भूलोक से भुवर्लोक को, भुवर्लोक से स्वर्गलोक को, स्वर्गलोक से महर्लोक को, उससे जन लोक को उससे तपलोक को और तपलोक से सत्यलोक को प्राप्त हो जावेगा। सत्यलोक से, ब्रह्मा, ब्रह्मा से विष्णु, विष्णु से महादेव और महादेव से निराकार ज्योति स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो जायगा। यह उन्नति की हद है।

"सा काष्ठा सा परागतिः।"

अब परमात्मा को प्राप्त होने के लिए यत्न करना चाहिये, सत्य मार्ग पर दृष्टि रहनी चाहिये, जीवन के रुख को ईश्वर की तरफ झुकाना चाहिये। परमेश्वर के नाम जपने वाले, कीर्तन करने वाले, उसकी महिमा को जानने वाले, सत् मार्ग को बतलाने वाले, भ्रम ज्ञान को हटाने वाले, जिनकी वाणी के द्वारा अज्ञान ऐसे मिट जाता है जैसे सूर्य की किरणों के द्वारा अन्धकार। ऐसे साधु, महात्मा और भले पुरुष इनका संग जो सत्संग कहलाता है करो। सत् परमेश्वर है उसका संग 'अहं ब्रह्माऽस्मि' 'तत्त्व मसि' वाक्यों के अनुसार जैसे तुम देह, प्राण, इन्द्रियें, मन, बुद्धि को अपना आपा खयाल करते रहे हो, मानते रहे हो वैसे ही अजर, अमर, निरञ्जन, निराकार, ज्योतिस्वरूप परमात्मा को अपना आपा मानो, खयाल करो। ऐसा जो ब्रह्मात्मा का एकत्व रूप ज्ञान है उस ज्ञान के उदय होने में जिस कर्म के द्वारा सहायता मिले वही कर्म अच्छा है। फूल वह ही अच्छा है जो ठाकुर जी पर चढ़ाया गया है उस फूल की अपेक्षा जो बिखर कर धूल में मिल गया है। कर्म वही अच्छा है जो परमात्मा के लिये हो। वही पुत्र, धन, कलत्र, इष्ट मित्र, जो भगवान् की भक्ति के लिये हों अच्छे हैं। वही जीवन अच्छा है जिसमें भगवान् के गुण, कीर्तन, नामों द्वारा किये जायं, सत्संग हो, ज्ञान हो। आत्मा अजर अमर और निष्पाप, निरंजन, निर्विकार, ज्योति स्वरूप

हो जाय । परमात्मा को अनन्तवार हमारी नमस्कार हो और धन्यवाद हो ।

'ओं अदाम ओं पिवामः'

'ओंकारेवेदं सर्वम्' 'आत्मैववेदं सर्वं' 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण अधश्चोर्ध्वं प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।'

अहा हा ! सब कुछ यह परमात्मा ही है । आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर नीचे आकाश की तरह परमात्मा ही छाया हुवा है ।

कर्म सत्यानृते चोभे त्वमेवास्ति नास्ति च ।

बुरे भले कर्म भ्रम के सिवाय कुछ नहीं । सत्य, असत्य; द्वैत, अद्वैत; अन्धकार, धूप; शुभाशुभ सापेक्षिक शब्द हैं । मनुष्यों के कर्म एक मत की अपेक्षा से दूसरे मत के कर्म शुभाशुभ कहलाते हैं । जैसे वैष्णवों का स्नान करना, तिलक लगाना स्वर्ग को ले जाता है वैसे ही जैनियों का नहाना, मुंह धोना, तिलक लगाना विपरीत है ।

"मुंह धोवे रोजी खोवे न्हाय नरक को जाय"

स्मृतियों में लिखा है :—

एकाहमपि कर्त्तव्यं भूमिष्टमुदकं शुभम् ।
कुलानि तारयेत् सप्त यत्र गो वितृषिर्भवेत् ॥

तालाब, पोखर बनाने का, खोदने का इतना माहात्म्य है कि इतना गढ़ा भी भूमि में खोद देना कि जिसमें इतना पानी भर जाय जितने में एक गाय की प्यास बुझ जाय उसका इतना पुण्य होता है कि अपने सात कुलों को संसार से तिरा कर स्वर्ग को ले जाता है। जैनियों का इससे विपरीत है। इसी तरह से मुसलमान खुदा के नाम पर गौ का बलिदान पुण्य और हिन्दू, बुद्ध जैन अपुण्य मानते हैं। हिन्दू कहते हैं इन्द्रियों का नाम गौ है, इनको वश में करो और परमात्मा के मार्ग पर चलाओ यह गो बलि करो। इसी तरह से मुर्दे का जलाना, गाड़ना, पींजरे में रखना और जंगल में फेंकना इत्यादि अच्छा बुरा मानते हैं। मरने के बाद जीव का क्या होता है। यथा कर्म यथा श्रुतं के अनुसार जीव अपने खयाल से भिन्न-भिन्न प्रकार की गतियों को प्राप्त होता है जो वास्तव में नहीं है। एक संस्कृत का लिखा-पढ़ा पण्डित जब मर गया और कुछ देर के पीछे जिन्दा हो गया उससे पूछा कि तूंने क्या देखा तो कहा 'कि मुझे दो यम के दूत यमपुर ले गये। वहां यमराज एक बड़े सुन्दर सिंहासन पर बैठा हुवा था, उनके माथे पर श्वेत चन्दन था, गले में श्वेत पुष्पों की माला थी, लाल कुर्ती थी और पौण्ड्रक भैंसा थोड़े फासले से खड़ा हुवा था। उन्होंने वही देख कर कहा कि इसका हुकम अभी नहीं है, इसे नीचे डाल दो। मैं नीचे डाल दिया गया और जैसे स्वप्न में कूवे में और तालाब में गिरते हुए भय होता है और

फिर गिरते हुवे धरती या जल में पहुँचते ही निद्रा आ जाती है ऐसे ही नींद आ गई। जब वह खुली और होश आया तब सबने कहा कि जिन्दा हो गया। मैंने मर कर यह देखा।' एक मुसलमान एक बार मर गया। उसने कहा 'मुझे दो आदमी पकड़ कर कबरों में ले गये। उनमें छोटी-छोटी कोठड़ी और कमरे भी थे। उसमें एक हाकिम बैठा हुवा था और वहां के रहने वाले पुण्यात्माओं को अच्छा भोजन और अच्छी जगह थी। दूसरों के हाथ में काले पर्चे थे। जिनको यहाँ काजी मौलवी और बहुत अच्छे आदमी समझते थे वहां उनको छोटी-छोटी कोठड़ी, चार-चार रोटी, बदना, बोरिया मिले हुवे थे। और जो सीधे-सादे थे, मजहब का पक्ष, नमाज, रोजा कुछ नहीं जानते थे जिनको यहां बुरा कर्म करने वाला कहते थे उनको अच्छे कमरे और अच्छा खाना, आराम के साथ रहना मिलता था। वहाँ पर मुझे खड़ा किया ' कबरों के अफसर ने कहा कि इसका हुकम नहीं है इसे ले जाओ। इस तरह से मैं मर गया था फिर मुझे होश आ गया। मेरी स्त्री ने समझा था कि वह सो गया है। तब मुझे पूछा क्या हाल है, मैंने सब वृत्तान्त कह सुनाया।' ऐसे ही मरने के समय मरने से कुछ पहले जैसी सवारी वाहन आदिक सुने हैं वैसे ही खयाल से दीखने लग जाते हैं जो यह समझता है कि मैंने पाप किये हैं उनके लिये भैंस, ऊँट, लढ़ा, बहली आदि घटियल सवारी लेकर यम के दूत आते हैं और पुण्य कर्म

करने वाले के लिये रथ, पालकी, पिन्नस, विमान पार्षद लेकर आते हैं। अब एक मनुष्य प्लेग में मरने लगा तो उसे पार्षद मोटर लेकर आये और कहा कि मोटर में बैठ ले और चल। ऐसे देखने वाले प्रायः जीते नहीं हैं। इससे सिद्ध है कि मनुष्य ने जो कुछ कर्म किया है और उसके विषय में जैसा सुना है वह अपने संकल्प से आप ही दीखने लग जाता है वास्तव में कुछ नहीं है जैसे वायु की बीमारियों में, स्वप्न में इन्द्रियों के विकृत होने पर झूठी शकल सूरत, लोक-परलोक भासने लग जाता है और जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि एक परमात्मा पूर्ण ब्रह्म, ज्योति, स्वरूप, निराकार, निर्विकार, शान्तात्मा अपना सर्वस्व है और मैं अपने उसी स्वरूप को प्राप्त हूंगा, उसी से आया हूं, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है वह परमात्मा को ही प्राप्त हो जाता है। यह जीव परमात्मा से बिछुड़ कर माता-पिता के गर्भाशय में होता हुवा बाहर आता है। माता-पिता के कर्मों को भोगता है और माता-पिता सन्तान के कर्मों को भोगते हुवे मनुष्य लोक में रह कर क्रमशः परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं और कुछ भी झगड़ा नहीं है। उपनिषदों में कहा है कि यह जीव जन्म धारण करता हुआ शरीर को प्राप्त होता हुआ सारी बुराइयों से युक्त हो जाता है। मरता हुवा शरीर को छोड़ता हुवा सारी बुराइयों से मुक्त हो जाता है।

"एतेभ्यो भूतेभ्यो समुत्थाय तान्नेवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञा अस्ति इत्यहोवाच याज्ञवल्क्य ॥"

याज्ञवल्क्य ने कहा यह जीवात्मा इन भूतों के साथ प्रकट होता है और भूतों के पृथक् होने पर परमात्मा में मिल जाता है। मैत्रेयी ने कहा "आप मुझे मोह में डालते हैं जो कहते हैं कि मर करके दूसरा जन्म नहीं होता। उन्होंने कहा कि मोह से या मोह में डालने वाली बात नहीं करता हूं। यह आत्मा अविनाशी है, मर करके इसी को प्राप्त होता है, समझदार के लिये इतना ही उपदेश पर्याप्त होता है। ऋषियों से कहा :

'जात एव न जायते कोन्वेनं जनयेत् पुनः विज्ञानमानन्द ब्रह्म।'

पैदा हुवा यह मर करके फिर पैदा नहीं होता। अपने स्वरूप विज्ञान और आनन्द में लय हो जाता है। मरते समय स्थूल शरीर पृथिवी में, प्राण वायु में, अग्नि अग्नि में। आकाश आकाश में, इन्द्रियें अपने देवताओं में, घ्राण पृथिवी में, नेत्र सूर्य में, मन चन्द्रमा में, अहंकार रुद्र में इत्यादि देवता अपने देवताओं में मिल कर अमर हो जाते हैं। ऐसे ही आत्मा परमात्मा में मिल कर अमर हो जाता है। यही बात शाण्डिल्य ने छान्दोग्य उपनिषद् में कही है। रह गये पाप पुण्य वह ज्ञानी के ब्रह्मात्मैक्य रूप ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं। अज्ञानियों को 'यथा कर्म या श्रुतं' के अनुसार सूक्ष्म शरीर में भोग लिये जाते हैं। इसलिये सब मनुष्यों को जानना चाहिये कि हम

परमेश्वर से आये हैं और परमात्मा को ही प्राप्त होंगे। सब कुछ आत्मा ही आत्मा है। वही परमात्मा है और सब कुछ भ्रम है। इससे आत्मा का कुछ बनता विगड़ता नहीं है। इसलिये परमात्मा की भक्ति करो, परोपकार जो कुछ हो सके परमात्मा की प्राप्ति के लिये करो। पैरों से तीर्थ व महात्माओं के दर्शन करने के लिये चलो; वहां से तुमको यथार्थ ज्ञान होगा। हाथों से श्रेष्ठ पुरुषों को पूज्य दृष्टि से, दुःखी दीनों को दया दृष्टि से दान करो परमात्मा के नाम पर। वाणी से उसके गुण, उसका नाम यह सच्चा उपदेश करो। मन से निश्चयपूर्वक उसी को मानो और उसी एक की पूजा करो। चित्त से बार-बार उसके स्वरूप का चिन्तन करो। बुद्धि से उसी का निश्चय करो। अहंकार से वह परमात्मा मैं ही हूँ। ज्योति स्वरूप, निराकार, निर्विकार निष्क्रिय, निर्गुण, मन इन्द्रियों से अगम्य, जगत् निषेदावधिभूत, नेति नेति करके कहा हुवा वह वास्तव में मेरा हो स्वरूप है। आंखों से जो कुछ दीखता है, मन से जो मनन किया जाता है, कानों से जो सुना जाता है, बुद्धि से जो निश्चय किया जाता है, त्वचा से जो स्पर्श किया जाता है, जिह्वा से जो रस लिया जाता है, घ्राण से जो गन्ध ली जाती है वह सब का सब परमात्मा अपना ही आत्मा है। इस ज्ञान से जो बड़े से बड़ा मोक्षधाम है उसको तुम स्वयं प्राप्त हो जाओगे। जो कुछ तुम इस मनुष्य जन्म में सिद्धि और करामात या जो कुछ चाहते रहते हो सूक्ष्म शरीर

में स्वत: सिद्ध प्राप्त हो जायंगी। तुम मर कर देवता बनोगे, गन्धर्व बनोगे। यदि तुम्हारा निश्चय डांवाडोल होगा तो भूत-प्रेत और पितर बन जाओगे। इन सब को अष्ट प्रकार की सिद्धि और नव निधि प्राप्त हैं। तुम ऊपर ही ऊपर को सूक्ष्म से सूक्ष्म उन्नति करते जाओगे नीचे को कभी न गिरोगे। जिसके लिये यह सृष्टि रची गई, देवता, नर, पितर सब ने जिसके देखने के लिये यत्न किया, सब माताओं ने उदर में इसको धारण कर कष्ट उठाये, सारे के सारे काम, मनोरथ सफल हुवे। सब मनुष्यों को मरने पर खुशी और उत्सव मानना चाहिये। रोना, धोना, रंज फिकर नहीं करना चाहिये। जब गंगा जी ने अपने सातों पुत्रों को गंगा में डुबा कर मार दिया तब राजा शान्तनु ने बड़ा दु:ख मान कर अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ते हुवे कहा तू इनको क्यों मार देती है ? तुझे क्या दया नहीं आती ? तब गंगा जी ने कहा कि मैंने इनको स्वर्ग को पहुंचा दिया है। इस संसार में ऐसी उलटी रिवाज है कि जब किसी का सम्बन्धी कारागार में बद्ध हो तब तो खुशी और उत्सव मनाते हैं, सातिया काढ़ते और ढोल बजाते हैं, दान पुण्य करते हैं इत्यादि आनन्द मनाते हैं और जब कारागार से मुक्त होकर उत्तम पद और स्थान को अर्थात् अपने घर को आते हैं तब रोते, चिल्लाते और शोक मनाते हैं। नहीं तो यह समय आनन्द मनाने का है वह रंज मनाने का है। संसार की उल्टी रीति है। इसको देखकर कबीर महात्मा भी रो पड़ा।

चलती को गाड़ी कहैं तत्व माल को खोवा।
उलटी रीत संसार की देख कबीरा रोवा॥

कबीर वह दोहा फिर कहते हैं:—

जा मरने से जग डरे मोय वड़ो आनन्द।
कब मरहुं कब पाय हों पूरण परमानन्द॥

जब मनुष्य बहुत जोर से भगते-भगते थक जाता है तो उसको धीरे चलने में आनन्द आता है, उससे अधिक बैठ जाने में, उससे अधिक सोने में और उससे ज्यादा बेहोशी (मरने) में। एक आदमी जब मरने लगा तब उसने कहा कि जब मनुष्य मरने लगता है तो सौ बिच्छु काटने का दुःख होता है यह बात अब नितान्त झूठी निकली। अब मैं मरने को हो रहा हूँ अब मेरे श्वास नाभि पर न जाकर ऊपर से ही लौट आते हैं और मैं एक बेहोशी शून्य में मानों समाता जैसा हूं और बड़ी शान्ति, शीतलता और आनन्द का अनुभव करता हूं। मरते हुये पुरुष की वाणी मन में लय हो जाती है और मन परमात्मा में लय हो जाता है। मृत्यु क्या है अजर अमर होना है। ओं ओं ओं कहकर सृष्टि उत्पन्न हुई। सोऽहं सोऽहं कह कर उसी में लीन हो गई। हम न तुम तो दफ्तर ही गुम। एक आनन्द ही आनन्दस्वरूप परमात्मा है।

"आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयान्ति अभिसंविशान्ति॥"

आनन्द से ही सब को उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति हो कर सब आनन्द से ही जीते हैं। मरते हुवे आनन्द को ही प्राप्त होकर उसमें लय हो जाते हैं। तुम जानते ही हो माता पिता को एक साथ जब आनन्द आता है तब ही जीव की उत्पत्ति होती है। आनन्द के सहारे ही आनन्द की आशा पर प्राणी जीता रहता है अन्त को आनन्द में ही लीन हो जाता है। यही ब्रह्म है ऐसा जान।

"ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति"

ब्रह्म के जानने वाला ही ब्रह्म हो जाता है।

'न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।'

जिसकी कामना सब पूरी हो गई हैं, जिसको केवल ब्रह्म ही की कामना है उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। वह यहां ही ब्रह्म होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

यः आत्मा अपहत पाप्मा विजरो विमृत्यु विशोको विजिवत्सो पिपासः सत्य कामः सत्यं संकल्पः सोऽन्वेष्टव्यःसविजिज्ञासितव्यः।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नामं।
कोनो महा दितयो पुनर्दात पितरं च दृश्येयं मातरं च॥

हम किसका नाम पवित्र जानें, कौन हमको माता-पिता का सुख दिखलाता है।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां, मनामहे चारु देवस्य नाम।

हम अग्नि परमात्मा का नाम पवित्र जानें। जो हमको

आनन्द से पृथिवी में माता-पिता का दर्शन करता है।

ऋग्वेद के 'इस मन्त्र में यज्ञ यूप से बन्धे हुवे रोहित की प्रार्थना अथवा पुनर्जन्म का वृत्तान्त है। लड़के की जन्मते स्तन पान करने में तुरन्त ही प्रवृत्ति होना और तीव्र स्मृति होना और मृत्यु का भय होना इस बात को सिद्ध करते हैं कि पूर्व जन्म में उसे खाने-पीने का अभ्यास रहा है, मरने का अनुभव किया हुआ है। इसी कारण से शेर को देखते ही गौ घबड़ा जाती है, बिल्ली को देखते ही छोटी चूही भगती है। यह मत्यु का भय देख देख के नहीं बैठता स्वाभाविक ही बैठता है।

जैसे किसी पशु को किसी मकान में मार-पीट द्वारा दो-चार दिन दुःख देकर उसे मुक्त किया गया हो और फिर बहुत पशुओं के साथ में मिलाकर उसे उस मकान में पुनः लाया जावे तो और सब तो पशु सानन्द उस मकान में प्रवेश कर जायंगे पर वह पशु जिसमें उसने दुःख अनुभव किया है नहीं प्रवेश करेगा। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य जो मौत से डरता है वह पहले भी मर चुका है और मौत के दुःख को अनुभव कर चुका है। योग्य भाष्य में जैंगीसव्य मुनि को अपने दश महा कल्पों के जन्मों का ज्ञान हुआ। अकाट्य भगवान् ने पूछा कि तैंनें इनमें क्या अनुभव किया? उसने उत्तर दिया कि दुःख ही अनुभव किया। ऐसे ही बहुत से ऋषियों ने अपने दूसरे जन्मों का वृत्तान्त कहा। अभी भी

ऐसे बहुत से मनुष्य उत्पन्न होते हैं जिन्होंने अपने दूसरे जन्मों के वृत्तान्त और निशान बताये। यूनान के फीसा गोरस ने अपने चेलों को कहा कि मैं पहले जन्म में फौज में सिपाही था। अमुक पर्वत की कंदरा में मेरे हथियार रक्खे हैं। देखा तो उसी प्रकार वहां ही मिले। और भी कई बातें बतलाईं। मौलाना रूम ने कहा मैंने कई जन्म धारण किये। खान खाना नवाब कहता है—

कबहुंक खग मृग मीन, कबहुं मरकट तनु धरके।
कबहुंक सुर नर असुर, नाग मैं आकृति करके॥
नटवत लख चौरासी, स्वाँग धरि धरि मैं आयो।
हे त्रिभुवन के नाथ, रीझ कर कछु न पायो॥
जो हो प्रसन्न तो देहु अब, मुक्ति दान मांगूं विहंस।
जो पै उदास तो कहहु इम, मत धररे नर स्वाँग अस॥

और मतवालों का खयाल है इमाम महदी, ईसा, कृष्ण फिर अवतार लेंगे।

बहूनि मैं व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। (कृष्ण)
जातस्य ही ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च॥ (कृष्ण)
नाना योनि सहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
अहारा विविधा मुक्ता पीता नाना विधास्तना॥
जातश्चैव मृतश्चैव जन्मश्चैव पुनः पुनः।

यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
एकाकि तेन दहोऽहं गतास्ते फल भोगिनः ।
अहो दुःख निमग्नोऽहं न पश्यामि प्रतिक्रियां ॥
यदि योन्यां प्रमुच्येहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् ।
अशुभक्षय कर्तारं फलमुक्ति प्रदायकम् ॥
यदि योन्यां प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम् ।
अशुभ क्षय कर्तारं फल मुक्ति प्रदायकम् ॥
यदि योन्यां प्रमुच्येऽहं सांख्य योगमयभ्से ॥

यह निरुक्त और गर्भोपनिषद् में विस्तार पूर्वक लिखा है। इसका अभिप्राय यह है कि गर्भ में स्थित जीवात्मा को अपने सब जन्मों का ज्ञान होता है। वह कहता है मैंने नाना योनि देखी, नाना प्रकार के स्तन पीये, मैं बहुत बार जन्मा और मरा, कुटुम्ब के लिये मैंने शुभाशुभ कर्म किये। वह अपने-अपने कर्मों के अनुसार और और योनियों को चले गये मैं अकेला ही अपने शुभाशुभ फल भोगने के लिये दुःख में डूबा हूँ। यहां से अपने छूटने का उपाय नहीं देखता हूँ। यदि हे परमेश्वर ! अबके मैं किसी तरह से इस गर्भवास के दुःख से छूट जाऊँ तो तुम्हारा ही भजन करूँगा और पापों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त करूँगा। ऐसे परमेश्वर से तीन बचन भरता है। तब परमात्मा उसकी तीन गांठ खोलते हैं।

तब स्त्री के तीन पीड़ा ऐसी होती हैं कि वह धातु की भान्ति तप जाती है और आंखों में से आंसू नहीं आता। और बच्चा पैदा हो जाता है। वहां सूक्ष्म वायु होती है और यहां स्थूल वायु के लगते ही बाहर आकर अपने कौल-करार को भूल जाता है और व्हां व्हां करके रोता है। जब बड़ा होता है, सुरत संभारता है सत्संग आदि करता है और शास्त्र द्वारा अपनी गर्भ में की हुई प्रतिज्ञा को याद करके परमेश्वर का भजन करता है तब जन्म मरण से छूट कर मुक्त हो जाता है। इन प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध होता है कि जीव अनादि काल से शुभाशुभ कर्म करता हुवा और परमेश्वर की व्यवस्था में उनका फल भोगता हुवा और कर्मों के अनुसार शुभाशुभ योनियों में शरीर धारण करता हुवा चला आता है। अब यह मनुष्य शरीर में मोक्ष के दर्वाजे पर आगया है। यहां आकर चूक गया तो फिर लख चौरासी योनियों में चला जायगा। फिर पता नहीं मनुष्य शरीर कब मिले। इसलिये सावधान होकर परमेश्वर का भजन और परोपकार करना चाहिये जिससे जन्म-मरण से छूट कर मुक्ति को प्राप्त हो जाय।

चौरासी हाथ के एक अहाते में एक अन्धा आदमी भटकता फिरता था। एक महात्मा ने उसे उपाय बतलाया कि भीत से हाथ लगा कर चल। जब दर्वाजा आयेगा ज्ञात हो जायगा। वह उसी तरह से चला, जब दर्वाजा समीप आया तो उसमें अल्हड़पना और प्रमाद आगया। उसने

समझा देखें तो अन्धे कैसे चलते हैं चलके देखूं । इस अस में दर्वाजा निकल गया । फिर बहुत समय के पीछे जब फिर द्वार आया तो उसकी पीठ में खाज हुई । वह खुजाने लग गया और द्वार चला गया । तब उसने महात्मा के वचन को भी झूठा मान भित्ति से हाथ लगाना भी छोड़ दिया और भटक भटक कर मर गया । अतएव अल्हड़पन, प्रमाद, कुटुम्ब की आसक्ति, विषय वासना की खुजार को छोड़ कर सावधानी से परमात्मा का भजन परोपकार करना चाहिये ।

अनेक जन्मों में किये हुवे शुभाशुभ बहुत से कर्म जब इकट्ठे हो जाते हैं उनको संचित कर्म कहते हैं । उनमें से कुछ कर्मों से निर्धारित जाति, आयु, भोग और भोगायतन यह शरीर उत्पन्न होता है । यह प्रारब्ध कर्म का फल है । प्रारब्ध-कर्म ज्ञान अग्नि से जैसे संचित और क्रियमाण कर्म भस्म हो जाते हैं वैसे भस्म नहीं होता । यह ज्ञानी अज्ञानी सबको भोगना पड़ता है । ज्ञानी के संचित कर्म ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं, क्रियमाण शुभाशुभ कर्म दूसरों को प्राप्त होते हैं । निन्दा करने वालों को, ज्ञानी से द्वेष रखने वालों को पाप का फल मिलता है । सेवा, सुश्रूषा व स्तुति करने वालों को पुण्य का । और प्रारब्ध कर्म भोग से । इस प्रकार तीनों कर्मों से छूट कर ज्ञान द्वारा मुक्ति को प्राप्त हो जाता है । निष्काम कर्म, उपासना और ज्ञान से अन्तःकरण के मल विक्षेप आवरण यह तीन दोष निवृत्त हो जाते हैं । धूल बद्दल कोहरे आदि के हट जाने से

सूर्य का स्वयं प्रकाशमान् देदीप्यमान् साक्षात्कार होता है। इसी तरह से शीशे में मैलापन, उसका हिलना और मुंह और शीशे के बीच में पर्दा आजाने से कोई अपना मुख नहीं देखता है, इसी प्रकार अन्त:करण में पाप, चित्त का डावांडोल होना व जीव ब्रह्म के बीच में अविद्या का परदा आजाना इन दोषों के कारण परमात्मा का साक्षात् दर्शन नहीं होता। जब निष्काम कर्मों के द्वारा पाप दूर हो जाते हैं, उपासना द्वारा चित्त स्थिर हो जाता है और ज्ञान के द्वारा मूला अविद्या दूर हो जाती है तो वह परमात्मा मैं हूँ रूप से साक्षात्कार दर्शन देते हैं। जन्म मरण का दु:ख मिट करके परम सुख और शान्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है जो उसका स्वरूप भूत है। अब निष्काम कर्म मनुष्य कैसे करे? जो जो कर्म मनुष्य करता हुवा दिखाई देता है उसका वह अच्छा फल चाहता है। सेब, आम आदि वृक्षों के फलों की कामना से ही मनुष्य यह वृक्ष लगाता है यह सकाम कर्म हैं। बड़, पीपल, पलाश, इमली आदि का लगाना निष्काम कर्म है। निष्काम कर्म के विषय में एक दृष्टान्त है।

एक ग्रामीण आदमी किसी शहर में आया और उसने राजा के दर्शन करने को इच्छा प्रकट की। किसी महात्मा से पूछा कि महाराज! न तो मेरे में विद्या है न धन बल, न पराक्रम है जिसके द्वारा मैं महाराज के दर्शन कर सकूं। मेरा चित्त उनके दर्शन के लिये बहुत करता है। महात्मा बोले

निष्काम कर्म कर, राजा के गढ़ पर मदद लग रही है तू वहां जाकर काम कर, वेतन कुछ मत ले तो राजा तुझे देखने के लिये स्वयं आवेगा। वह ग्रामीण मनुष्य महात्मा के कथनानुसार निष्काम कर्म करने लग गया। प्रातः सायं किसी की कुट्टी आदि काट कर अपने भोजन का प्रबन्ध कर लेता फिर मजदूरों के साथ जाकर दिन भर काम करता और बहुत प्रेम से सब से अधिक काम करता। जब जब सायंकाल को नौकरी बटती तब नहीं लेता और कह देता कि मैं राजा का प्रजाजन हूं मेरा धर्म है कि राजा की सेवा निष्काम भाव से करूँ। इसी प्रकार नित्य काम करता और वेतन नहीं लेता था। उसकी यह ख्याति सब शहर में प्रख्यात हो गई और राजा तक भी पहुंच गई। राजा ने अपने मुसाहिबों को कहा कि चलो ऐसे राज-भक्त को तो देखना चाहिये। राजा वहां आये और उस को कहा कि तू जो चाहे सो मांग ले तैंने निष्काम कर्म किया है मैं इससे बड़ा प्रसन्न हुवा हूं। तब वह हाथ जोड़ कर उन के चरणों में गिर पड़ा और कहा निष्काम कर्मों के द्वारा आप मुझ पर प्रसन्न हो गये और दर्शन दिया तो अवश्यमेव निष्काम कर्मों के द्वारा सारे विश्व का स्वामी जो परमात्मा है वह भी दर्शन देगा। यह मेरे अब निश्चय हो गया है। मैं उसकी प्राप्ति के लिए निष्काम कर्म करूँगा। वह ऐसे ही करने लग गया जैसे दिल्ली के मेले में महात्मा नानक जी ने प्यासों को पानी पिलाया वैसे ही प्यासों को पानी पिलाने

लग गया। मांग करके या मजदूरी करके जो कुछ प्राप्त होता उसमें से भूखों को भोजन देता। रास्ते में से काँटों को, रोड़ा कंकरों को अलग कर देता कि किसी के पैर में न लगें। आम, नारंगी आदि के छिलकों को जो चूस करके लोग रस्तों में डाल जाते उनको उठा करके अलग डालता। इसी तरह के परोपकार रूपी निष्काम कर्मों को करता रहता। सबके दुःख दूर करने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करता। इस तरह के निष्काम कर्म करने से उसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और परमात्मा ने उसको दर्शन दिये। जिस कर्म के करने से बहुत मनुष्यों तथा जीवों को सुख होय वह पुण्य और जिस कर्म से बहुत जीवों को दुःख होय और थोड़ों को सुख वह पाप समझना चाहिए। इस विषय में निरुक्त अध्याय १३ खण्ड १९ में लिखा है:—

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनि सहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥

आहारा विविधा भुक्ता पीतानाना विधस्तना।
मातरो विविधा दृष्टा पितरः सुहृदस्तथा॥

अवाङ्मुखः पीड्यमानो जंतु ध्वंसमन्वित।
सुरसवाही विदुषोपि तया रूढो अभिनिवेशः॥

युक्ति से भी यही सिद्ध है कि किसी पदार्थ का नाश

नहीं होता। सम्बन्ध और गुण बदलते रहते हैं इसी को पुनर्जन्म कहते हैं।

असुनीते पुनरस्मास चक्षुः पुनः प्राण मिह नो धेहि भोगं ज्योक् पश्येमः सूर्य मुच्चरन्तं अनुमते मृणयानः स्वस्ति ॥ऋग्वेद

हे असुनीते परमेश्वर ! द्वितीय जन्म में हम सुखी होवें। पुनर्जन्म में चक्षु आदि इन्द्रिय और पदार्थों को ज्योक् (निरन्तर) शक्ति धारण करो। हे अनुमन्त परमेश्वर ! हम को सुखी करो दूसरे जन्म में सुखी ही होवें यह प्रार्थना आप से करते हैं। दीवा जलता है। संघर्षण करने वाली शक्ति उत्पन्न हो कर परमाणुवों में रगड़ के द्वारा प्रकाश करती हुई परिवर्तन कर देती है। सारा तेलवायु में स्थित होकर वर्षा द्वारा फिर पृथिवी में आता है। फिर सरसों रूप से उत्पन्न होकर पुनः तेल बन जाता है। इसी प्रकार से जीवात्मा वायु में स्थित होकर श्रद्धा रूपी पुतला को देवता द्यौ लोक अग्नि में हवन करते हैं जिस अग्नि की आदित्य समिधा है, रश्मि धूम हैं, दिन अर्चि है, चन्द्रमा अंगार है, नक्षत्र विस्फुल्लिग हैं। उससे सोम राजा उत्पन्न होता है। उस सोम राजा को परिजन्य अग्नि में हवन करते हैं। उसका वायु समित, अभ्र-धूम, विद्युत अर्चि, अशिन अंगार, हिरादुन गर्जन शब्द चिन-गारी हैं। उस सोम राजा को देवता पर्जन्य में हवन करते हैं तो उससे वर्षा उत्पन्न होती है। वृष्टि रूप से परिणत उससे

अन्य रूप से परिणत होता है। पृथिवी अग्नि में हवन करते हैं उसका सम्वतसर समिधा, आकाश धूम, रात्रिलाट, दिशा अंगार, अवान्तर दिशा चिंगारी। उस अग्नि में देवता वर्ष को हवन करते हैं उससे अन्न होता है। उस अन्न को पुरुष रूपी अग्नि में हवन करते हैं जिसकी वाग् लकड़ी है, प्राण धूम हैं, जिह्वा अर्चि है, चक्षु अंगार है, श्रोत्र विस्फुलिंग है। उस अग्नि में देवता अन्न को हवन करते हैं। उस आहूति से रेत उत्पन्न होता है। उस रेत को देवता योषा रूप अग्नि में हवन करते हैं। उसका उपस्थ समित है, संकेत करना काम है, योनि अर्चि है, अन्तःकरण अंगार, अभिनिन्दा विस्फुलिंग हैं। उससे गर्भ उत्पन्न होता है। इस प्रकार से पाँचवीं आहूति में जल पुरुष रूप से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार उत्पन्न हुवा यावदायुष जीता है। उस प्रेत को अग्नि में जलाते हैं वहाँ अग्नि अग्नि है, समित समित है, धूम धूम है, लाट लाट है, अंगार अंगार है, चिंगारी चिंगारी है। पंचाग्नि द्वारा जीव का जन्म मरण निरूपण करने से वैराग्य उत्पन्न होता है। जो मनुष्य बन में श्रद्धा और तप द्वारा उपासना करते हैं वे अर्चि के समान होते हैं। अर्चि से दिन के अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। उससे षटमास उत्तरायण, उससे मास, मास से सम्वतसर, सम्वतसर से आदित्य, आदित्य से चन्द्रमा, चन्द्रमा से विद्युत, विद्युत से अमानव पुरुष आकर उनको ब्रह्मलोक में ले जाता है। वहां हमेशा बसता है। यह देवयान

पथ है। जो गृहस्थी इष्टा पूर्त्त, श्रौत, स्मार्त, अग्निहोत्रादि इष्ट वाप्यादि पूर्त्त कर्म करते हैं। वह धूम को अर्थात् धूवां के अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। धूम से रात्रि को, रात्रि से कृष्ण पक्ष, कृष्ण पक्ष से दक्षिणायन, दक्षिणायन से सविता को प्राप्त होता है। उससे चन्द्रमा, चन्द्रमा से पृथिवी, पृथिवी से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से गर्भ होता है। जो यहां रमणीय चरणा पुण्य कर्म करने वाले हैं वह ब्राह्मण क्षत्रिय आदि पुण्य योनियों को प्राप्त होते हैं। जो यहां कपूय चरणा कुत्सित पाप करने वाले हैं वह कपूय कुत्सित श्वान चाण्डाल की पाप योनि को प्राप्त होते हैं। कभी स्त्री, कभी माता, कभी माता कभी स्त्री, कभी पुत्र कभी पिता, कभी पिता कभी पुत्र। बहुतेरे तेली के बैल की तरह चक्कर लगाते हैं। हजारों ही वर्ष व्यतीत हो जाते हैं वहां के वहाँ ही रहते हैं। ऐसे ही कभी घर में चूहा, कुत्ता, मनुष्य, बैल आदि आसक्ति से बनते रहते हैं। दूसरे घाट यन्त्र की तरह ऊपर नीचे जाते आते रहते हैं। यहां से यज्ञादि पुण्य कर्म करके स्वर्ग को जाते हैं। वहाँ से "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति"।

पुण्य क्षीण हो जाने पर फिर कर्म करने के लिये यहाँ आते हैं। इस प्रकार गतागत में लगे रहते हैं। तीसरे उपासना द्वारा ब्रह्मलोक को जाते हैं और वहाँ ३६००० हजार बार प्रलय और उत्पत्ति होती है। इतने समय तक रह कर पुनः संसार में आते हैं।

आ ब्रह्म भुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

चौथे इन सब बातों को ब्रह्म रूपी अधिष्ठान में कल्पित और झूठी समझ कर जो केवल एक ब्रह्म के साक्षात् रूपी ज्ञान को लाभ करते हैं वे आवागमन से छूट कर सर्वदा के लिये ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं। उनके प्राण उत्क्रमण नहीं करते वह यहाँ ही ब्रह्म को प्राप्त दो जाते हैं।

"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ।"

यह कई प्रकार के शास्त्रोक्त मत के मनुष्य के विचार के वास्ते लिखे हैं। जैसी-जैसी जिसकी भावना होगी वैसा-वैसा ही उसको फल मिलेगा। संसार में निश्चय का बेड़ा पार।

———

परमात्मा और परमात्मा का उपदेश

आत्मा और परमात्मा क्या वस्तु हैं, यह कैसे जाने जाते हैं ? प्रत्यक्ष प्रमाण से वा अनुमान या शब्द प्रमाण से। यदि कहो प्रत्यक्ष से। प्रत्यक्ष तो इन्द्रियों के विना रुकावट विषयों के सम्बन्ध से न बदलने वाला निश्चय ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान के पीछे अनुमान (अनुमीयते यदनुमानम्) कार्य को देख कर कारण का, कर्म को देख कर कर्त्ता का अनुमान होता है। जैसे सृष्टि में क्रमबद्ध, तरतीबवार तरतीब और नियम पाया जाता है नियम और क्रम कर्म वाची होने से इनका कर्त्ता अवश्य है। घट घड़ा, पट वस्त्र, मठ मकान इत्यादि कार्य और बनावटी होने से इनका कर्त्ता (बनाने वाला) अवश्य है और वह चैतन्य ज्योति है। ऐसा ठीक ज्ञान अनुमान है। यथार्थ ज्ञानी और यथार्थ वक्ता कहा हुवा वचन शब्द प्रमाण है। इन तीन प्रमाणों से प्रमेय की सिद्धि होती है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच में प्रकृति आ जाने से दो कहे जाते हैं। वास्तव में एक हैं। एकैव शुद्ध चैतन्य माया और अविद्या की उपाधि से ईश्वर, सर्व शक्तिमान् और सर्वज्ञ

तथा जीव असर्व शक्तिमान् और अल्पज्ञ हुवा प्रतीत होता है। जब एक ही चैतन्य पर दृष्टि जाती है और उसी का ध्यान होता है और मैं वही शुद्ध ब्रह्म हूं इस ज्ञान से माया और अविद्या रूपी उपाधि भ्रम रूप अन्धकार ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय होने पर रात। फिर जीव कृत्कृत्य (मोक्ष) हो जाता है। यही मनुष्य जीवन का मुख्योद्देश्य है, यही लक्ष्य है। प्रत्यक्ष प्रमाण से भी ईश्वर की सिद्धि होती है। मानसिक और वैज्ञानिक भी योगियों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। योगी परमात्मा का साक्षात् दर्शन करते हैं। नास्तिक जब परमात्मा के अस्तित्व से नकार करता है उस समय उसके मन में आस्तिक की भान्ति परमात्मा का खयाल बना रहता है। इससे सिद्ध है कि मन द्वारा उसका प्रत्यक्ष है। वेद में लिखा है "परमात्मा देखने योग्य है, सुनने योग्य है और मानने योग्य है।"

मनसैवाव दृष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
आत्मावारे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥

आत्मा शुद्ध मन से देखना चाहिये। देखने के साधन उसका श्रवण, मनन और निदिध्यासन हैं। जैसे शरीर सहित आत्मा का सब इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है ऐसे ही ब्रह्माण्ड सहित परमात्मा का भी प्रत्यक्ष होता है।

"पिण्डे सो ब्रह्माण्डे"

सब प्रमाणों से एक अद्वितीय ब्रह्म ही सिद्ध होता है

उससे भिन्न कोई नहीं है। वह ब्रह्म मैं ही हूं इस ज्ञान का परमात्मा उपदेश करते हैं। इस ज्ञान के मानने के लिये और इसी की प्राप्ति के लिये सारे कर्म और सारी चेष्टायें करनी चाहियें। शुद्धाकांक्षा से उसकी आज्ञा माननी चाहिये। उसकी आज्ञा यह ही है कि सब को अपना ही आत्मा समझो। सब की भलाई के लिये और सब के सुख के लिये कर्म करो और प्रार्थना करो। परमात्मा को जो अपना ही आत्मा है बार बार नमस्कार करो, हाथ जोड़ कर शिर झुकाओ और लाख लाख धन्यवाद दो जिसने हमको मनुष्य जन्म, ऐसे ज्ञान सुनने का अवसर और सारी सृष्टि के पदार्थ प्रदान किये हैं। जब मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है तो उसको भी भगवान् सीधे रस्ते में ले आते हैं। उसको उसका चिन्तन चाहे प्यार से चाहे बैर से हो। एक मनुष्य जब भ्रम के चक्कर में आया तो कहने लगा परमात्मा कोई चीज नहीं है। यदि है तो वह ज्ञान शक्ति नहीं प्रत्यक्ष अज्ञान की शक्ति है। जब वह बागड़ में पहुंचा तो तरबूजे और उसकी बेल को देख कर कहा कि यदि भगवान् होता तो उसे इतनी भी बुद्धि न थी कि इतनी छोटी बेल से इतना बड़ा २० सेर का फल लगाया, यह फल तो बड़ पोपलों से लगाना चाहिए था, इसी तरह से जहां आज एक बद्दल बर्ष जाता है कल भी वहां ही वर्षने को जाता है! एक बद्दल वर्षते ही सारे बद्दल उसकी तरफ चले जाते हैं। उनको यह ज्ञान नहीं कि कहां और कितना पानी बरसावें।

एक भेड़ कूवे में गिरने को जाती है तो सारी भेड़ उसके पीछे चलती हैं। इसी तरह से सारी सृष्टि में भेड़ा चाल है। ऐसा विचार करते-करते उसने एक बड़ के पेड़ के नीचे आकर विश्राम किया। बड़ के फल को देख करके तो और भी भगवान् का अनिश्चय हुवा, इतने ही में एक पक्षी ने बड़ के फल को काटा तो वह उसकी नाक की ऐसी नस पर पड़ा जिससे उसका सारा शरीर झन्ना उठा और इससे उसके हृदय की आँख खुल गई, वह सांजलि शिर झुका-झुकाकर परमेश्वर को नमस्कार करने लगा और उसका धन्यवाद गायन करने लगा कि हे परमेश्वर! तू जानता था कि बड़ के नीचे तो मनुष्य आकर विश्राम और शयन करते हैं बेल के नीचे नहीं। आज वह फल मेरी बुद्धि के अनुसार यदि बड़ से लगा हुवा होता तो बस खातमा ही हो जाता। इसलिये इस देश में परमात्मा ने ऊंटों की गर्दन लम्बी बनाई है कि वह वृक्षों के पत्तों से पेट भर लें। तू जानता है कि यहां इतना वर्षना चाहिये यही भले के लिये है। तेरी इच्छा, तेरा काम जीवों के भले के लिये होता है अपने लिये कुछ नहीं, इस तेरी इच्छा और काम के साथ में हम अपनी इच्छा और काम मिलावें। हमारी इच्छा कुछ न हो, तेरी ही इच्छा को परम इच्छा मान कर काम करें और कहें कि परमात्मा तेरी इच्छा पूर्ण हो। मैं अपनी इच्छा इसीलिये कहता हूं कि वह तेरी इच्छा है।

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः ।
केवलाखण्ड बोधोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः ॥

मैं सब का आत्मा हूं, सर्व रूप हूं और सर्वातीत शुद्ध स्वरूप हूँ। एक राजा कहता था कि परमात्मा नहीं है अपने पुरुषार्थ से ही मैं राजा हुवा हूं। इसी तरह से पुरुषार्थ करके सब राजा हो सकते हैं। सब वस्तुएँ प्राप्त कर लेते हैं, परमेश्वर की दया और दातृ शक्ति से हमको यह पदार्थ नहीं मिले हैं। इसलिये वह किसी भी वस्तु के मिलने पर परमेश्वर का धन्यवाद और नाम नहीं लेता था। सब को कहा करता था कि परमात्मा नहीं है। उसका नाम जप कर वृथा जीभ को क्यों थकाया करते हो। इतने समय में और पुरुषार्थ करते तो और अधिक फल पाते। लोगों से कहता कि यदि मकान के देखने से मकान वाले का ज्ञान होता है। हिमालय पर्वत पर बिना बनाने वाले के आप ही बर्फ से कितने ही मकान बनते हैं और ढह जाते हैं। बादल वर्षा ऋतु में अनेक आकार धारण करते हैं—कोई गणेश का, कोई हाथी का, कोई गाय का, कोई और किसी मनुष्य का। पानी के बर्षने से बहुत सी औषधी, वनस्पति आदि उत्पन्न होती हैं और आप ही नष्ट हो जाती हैं। यत्रादि के सड़ जाने से या परिणत होने से मद्य शक्ति उत्पन्न होती है ऐसे ही चार तत्वों के परमाणु इकट्ठे हो जाने से और परिणत होने से जीव शक्ति पैदा हुई

है। इनकी क्रिया बदल जाने से या बन्द हो जाने से इनसे उठकर इन्हीं में समा जाती है जैसे डले की आल डले में सूख जाती है। ऐसे हो जड़ में से चेतना उठकर जड़ ही में लीन हो जाती है। परमात्मा कुछ नहीं वह एक डराने का हव्वा या भूत बना लिया है और उसकी बातों की कथा रचली हैं, न ग्रन्थ बनाये हुवे हैं। खावो पीवो मौज उड़ाओ ऋण करके भी घी पीवो। जब यह शरीर भस्मीभूत हो गया तो देने लेने वाला कहाँ रहा। इस देह से पृथक् निकल कर जाता तो अपने इष्ट मित्र व कुटुम्ब के स्नेह से फिर लौट आता। ऐसा नहीं है। जब आवेगा अन्त ऐसा ही गधा और ऐसा ही सन्त। ऐसे-ऐसे उपदेशों से आस्तिक पुरुषों का जी दुखने लगा। वह सब एक मत होकर राजा को समझाने लगे। परन्तु उसकी एक समझ में ना आई। फिर राज्याधिकारी और उसके शुभचिन्तकों ने बन में जाकर वानप्रस्थी ऋषियों से निवेदन किया कि हमारा राजा नास्तिक हो गया है, आप चलकर उसको उपदेश करें जिससे राजा-प्रजा सबका भला हो। वे आये और उन्होंने बहुत सारा उनको उपदेश किया। उसने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा कि यदि परमात्मा है तो इसे हिला दे। है तो वह कहता क्यों नहीं कि मैं हूं, क्या उसमें वह शक्ति नहीं है इत्यादि बेढंगी दलीलों से उनका निरादर किया। उन्होंने राज कर्मचारियों को कहा कि अब इसके उल्टे ज्ञान की नदी चढ़ रही है। चढ़ी नदी पर

इञ्जीनियर को पुल नहीं बांधना चाहिये। जब ठिकाने आजावे तब पुल बाँधने का यत्न शीघ्र सिद्ध होता है। मूर्ख एक ही अध्यापक से सीखता है और वह है आपत्ति। सहस्र टक्कर लग करके एक बुद्धि आती है। तुम सब एक मत करके इसके भाई का राज्याभिषेक कर दो और इसे नदी से उतार दो। उन्होंने ऐसा ही किया। नये राजा ने हुकम दिया कि यह मेरे राज्य से खाली हाथ जान बचा कर चला जाय नहीं तो मार दिया जायगा। तब वह अपनी बुद्धि पर विश्वास करके राज्य से बाहर चला गया। उसके इष्ट मित्र किसी ने भी उसका साथ नहीं दिया। एक वेश्या उसके साथ गई। उसने उसको कहा कि यदि आप भगवान् को मानते तो इतना दुःख क्यों उठाना पड़ता। उसने कहा अब बुद्धि से पुनः पुरुषार्थ करेंगे और इससे फिर राजा बन जायँगे धैर्य धरो, मत डरो। वह वन में रहने लगा और ऋषियों से भिक्षा मांग कर निर्वाह करने लगा। एक रोज किसी ने कहा कि तुम्हारे भाई को ज्ञान हो गया कि वह ऋषियों का अन्न खाता है जिससे ऋषियों को दुःख होता है वह यह सुन भयभीत होकर वहां से भी चला गया और सोचने लगा कि अब मेरे पास एक ही कम्बल रह गया है। वेश्या को उढ़ादे तो आप अग्नि से तापै। एक रोज जब वेश्या ने उसे बहुत कहा कि परमेश्वर के न मानने का फल ऐसा ही दुख और आपत्ति है। उसने कहा परमात्मा है ही नहीं तो उसको मानें कैसे ? देख अब हम बुद्धि से

पुरुषार्थ करेंगे। पहले हम चोरी करके धन लायेंगे उससे नौकर रक्खेंगे फिर डाका देंगे और बहुत से धन जन से समृद्ध होकर राजा बन जायँगे। लकड़ी लाकर, आग जला कर उसको आश्वासन देकर और कम्बल लेकर चोरी करने चला। एक नगर में जाय एक मकान बहुत धनाढ्य का बुद्धि से विचार उसमें सेंध लगाई किसी को मालूम न हो इस खयाल से उसमें कम्बल ठूंस दिया और लगा मकान में धन टटोलने। तब एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य जागा और कहा कौन है कौन है ? वह डर से जल्दी किवार खोल कर भागा और कम्बल भी वहीं रह गया। अब भयभीत होकर सोचने लगा कि मैं जो कुछ भी करता हूं वह पूरा क्यों नहीं होता। मेरी इच्छा के विरुद्ध करने वाला परमात्मा कोई अवश्य है। तब वह परमात्मा की प्रार्थना करने लगा, अपने किये का पश्चात्ताप किया, तड़फकर और बिलबिलाकर कहने लगा, "हे परमेश्वर! मैं तुम्हारा हूं और तुम्हारी शरण हूं। त्राहिमां त्राहिमां। अब मैं तुम्हें कभी न भूलूंगा। अब तुम्हारा नाम जपूँगा, भजन करूँगा, ध्यान धरूँगा और तुम्हारे सब जीवों की सेवा करूँगा।" वह ऐसा ही करने लगा। लोगों में जब उसके भजन भाव की प्रसिद्धि हुई तो फिर उसको राजा बना दिया। इसलिए जो महात्मा और ऋषि-मुनियों के उपदेशों को नहीं मानता और उपदेश का असर नहीं होता आपत्ति उसको ठीक कर देती है। इस वास्ते भगवान् का भजन, स्मरण

नाम कोर्तन, ध्यान, आराधन, पूजन इत्यादि जल्दी ही सीखना चाहिये। बहुतेरे मनुष्य परमात्मा को मानते हैं कि वह कोई चीज जरूर है, ज्योति हो, शक्ति हो, प्राकृतिक हो वा अप्राकृतिक, वह जगत् से बनी हो या जगत् उससे। चर्कादि में औजार बाल को खाल उतारने वाले थे उससे भी सूक्ष्म आजकल विद्यमान हैं। एक वैज्ञानिक ने दीवे की ज्योति के एक जर्रे को पृथक् कर उसके आवरण उतारे अन्त में परमाणु के भीतर एक ज्योति (ताकत) दिखाई दी और उसको उसने परमेश्वर माना। कोई अपने गुरु को, कोई अपनी बुद्धि को, कोई निसंग आत्मा को, कोई किसी को कोई किसी को परमात्मा अवश्य मानते हैं। चाहे वह आस्तिक हो अथवा नास्तिक। कभी-कभी आस्तिक की अपेक्षा नास्तिक ज्यादा भगवान् का स्मरण करते हैं। वे शीघ्र मुक्त हो जाते हैं। एक राजा महात्मा के सत्संग में जाकर उनसे प्रार्थना करने लगा कि कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिससे परमात्मा न भूलें। उन्होंने कहा आज से परमात्मा का नाम न लेना। उसने ऐसा ही दृढ़ कर लिया। थोड़े दिन पीछे सब को मालूम हुवा कि यह राजा परमेश्वर का नाम नहीं लेता है तो सब आस्तिकों को और विशेषकर उसकी रानी को जो बड़ी भक्त थी और नाम स्मरण करती थी दुःख हुआ। सब ने राजा से परमेश्वर का नाम कहाने के लिये यत्न किया। एक दिन एक हर लाकर राजा से पूछा कि इसका क्या नाम है। उन्होंने समझा जब राजा

हर कहेगा तो हर महादेव का नाम है तो यह भगवान् का नाम इसके मुख से निकलेगा। परन्तु उनके मुख से न निकला। उन्होंने कहा कि यह काष्ठ यन्त्र है, कृषि कर्षण यन्त्र है। उनसे नाम लिवाने के लिये अनेक यत्न करते थे। वह राजा रात और दिन परमात्मा और उसके नाम का ही चिन्तन करता रहता था कि कहीं मुख से बाहर न निकल जाय। एक दिन स्वप्न में उसके मुख से राम नाम सहसा निकल गया। तब तो रानी सुनकर बहुत प्रसन्न और प्रफुल्लित हुई। उठते ही बहुत दान पुण्य और उत्सव मनाने लगी, क्योंकि वह बड़ी आस्तिक थी। उसको ऐसा करते देख राजा ने कहा कि इस का क्या कारण है जो तुम आज ऐसी खुशी मना रही हो। रानी ने कहा आप परमेश्वर का नाम नहीं लेते थे मुझे इस बात का बड़ा दुःख था। रात को स्वप्न में आपके मुख से राम नाम सुनते ही बड़ा आनन्द हुवा है। राजा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा कि मेरे मुख से उसका नाम निकल गया क्या यह सत्य है? रानी ने उत्तर दिया हां यह सत्य है। यह सुन कर राजा तुरन्त ही पंचत्व को प्राप्त हो गया और परमात्मा में जाकर मिल गया। इसलिये नास्तिक आस्तिक, धर्मी अधर्मी, ज्ञानी अज्ञानी का बाह्य व्यवहार से पता नहीं लगता है। शत्रुता से, मित्रता से, भय से, लोभ से परमात्मा का खयाल निरन्तर चित्त में रहे उसी से परमात्मा प्रसन्न और प्राप्त होता है। अन्य का रहे तो अन्य को प्राप्त होता है।

जो मन नारी की ओर निहारत तो मन होत है ताहि को रूपा।
जो मन काहू से क्रोध करे, तब क्रोध मयी हो जाय तद्रूपा॥
जो मन माया ही माया रटे नित, तो मन डूबत माया के कूपा।
सुन्दर जो मन ब्रह्म बिचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा॥

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया।
कीटको भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते॥

जैसे भ्रमरी का ध्यान करता कीट भ्रमरत्व को प्राप्त होता है वैसे ही एक निष्ठा से ब्रह्म का ध्यान करता पुरुष ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। अतएव हम सब को सावधान हो कर बार-बार ब्रह्म का ही चिन्तन करना चाहिये। गीता में भगवान् ने कहा है—

अन्त काले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः॥

अन्तकाल में जो पुरुष मेरा स्मरण करता हुवा देह को छोड़ता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है। हे कौन्तेय! पुरुष अन्त काल में जिस-जिस भी पदार्थ का स्मरण करता हुवा देह को छोड़ता है वह सर्वकाल उसी की भावना वाला होने से उसी-उसी पदार्थ को प्राप्त होता है।

× × ×

शरीर छोड़ने से पहले श्रीमहाराज जी ने ये दो भजन और लिखवाये:—

(१)

लहरा रही है ज्योति चिदानन्द की ॥
सब ब्रह्माण्डों के पृष्ठ भाग पर सत्ता स्फूर्ति सबको दे रही है
निजानन्द की ॥
सारे विश्व के बाहर भीतर हृदय कमल में सूर्य मण्डल में ।
जगमगा रही है ज्योति महानन्द की ॥
यह संसार असार है अन्तिम एक ज्योति अखण्डानन्द की ॥
सूर्य चांद विद्युत और तारे, अग्नि ज्योति है भवानन्द की ॥
ज्योति बिना कछु और नहीं है, अहं ज्योति है ज्ञान यही है ।
अहं ब्रह्मास्मि ज्ञान की ज्योति, जग रही है घट घट
परमानन्द की ॥

(२)

ममात्मा परमात्मा विश्वात्मा विश्वस्वरूप ।
ब्रह्मात्मा सर्वात्मा सूर्यात्मा ज्योतिस्वरूप ॥
अखण्डात्मा पूर्णात्मा ज्ञानात्मा ज्ञानस्वरूप ।
सुखात्मा चिदात्मा सदात्मा सत्यस्वरूप ॥
भावात्मा भवात्मा शून्यात्मा शून्यस्वरूप ।
ज्ञातात्मा ज्ञेयात्मा ध्येयात्मा ध्यान स्वरूप ॥

●

आश्रम के उद्देश्य

१. श्रीभगवान् की भक्ति का प्रचार करना।

२. गोरक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना।

३. जंगलों में वृक्ष लगवाना और उसके बीच में जलाशय बनवाना।

४. शिक्षा का प्रचार करना जिसमें मनुष्य मात्र विद्यालाभ कर सकें और प्राचीन प्रथा को फिर प्रचलित करना।

५. बीमारियों के अवसर पर दवाई बांटना।

६. आस-पास के ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति और प्रेम बढ़ाना।

७. सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जागृत करना।

८. राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।